5570

बलवन्त सिंह

सपने सुहाने

पुरुष एवं नारी हृदय की भावनाओं
का चितेरा एक सशक्त उपन्यास

© हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटिड, १९७२

•

SAPNE SUHANE

NOVEL

BALWANT SINGH

PRICE : 3·00

सपने सुहाने

अगर कभी आपको पीरपुर जाना हो तो वहां गर्म पानी का वह सोता देखना न भूलिए जो एक गुफा से निकलकर दो पहाड़ियों के बीच में बहती हुई नदी में मिल जाता है। यहां पर आजकल दूर-दूर से लोग नहाने और मनोरंजन के लिए आते हैं।

आज से पचास वर्ष पूर्व न यहां कोई दुकान थी, और न ऐसी गहमागहमी। सामने वाली पहाड़ी के ऊपर से पानी का बहुत बड़ा आबशार—झरना दिखाई देता था। अब झरना सूख चुका है, और पहाड़ी के सीने पर ऊपर से नीचे तक घाव की भांति एक निशान-सा रह गया है।

झरने वाली पहाड़ी के ऊपर, कुछ समतल स्थान पर आज-कल खंडहर दिखाई देते हैं, परन्तु उन दिनों यहां एक होटल था। यह बंगला एक अंग्रेज़ ने अपनी पत्नी के लिए बनवाया था, परन्तु एकाएक उसकी मृत्यु हो जाने के बाद उसकी पत्नी को वापस विलायत जाना पड़ा। यह बंगला वह अपने पति के पुराने नौकर रहीम को दे गई। रहीम का आगा-पीछा कुछ नहीं था, इसलिए उसने इस बंगले का होटल बना दिया, और पठानों के देश से मिले हुए कश्मीर के इस सुन्दर भाग में मौज से जीवन के दिन व्यतीत करने लगा।

२

रहीम भी अपनी किस्म का एक ही आदमी था। दुबला-पतला, ज़रा-सा कूबड़ निकला हुआ। सिर के बाल बहुत ज़्यादा काले थे। बीच-बीच में कोई-कोई सफेद बाल चांदी के तार की तरह चमक जाता था। गालों की हड्डियां उठी हुई, कल्ले अन्दर को घुसे हुए, छोटी-छोटी आंखें, घने अबरू, लम्बे-लम्बे मैले ऊबड़-खाबड़ दांत। लेकिन उसके दांत मज़बूत थे। इतनी उम्र हो जाने पर भी उसका एक भी दांत नहीं हिला था। नमाज़ भी पढ़ता था, रोज़ा भी रखता था लेकिन उसे शराब पीने की बुरी आदत थी। वह खुद भी अपनी इस कमज़ोरी को जानता था; लेकिन उसे इसपर कुछ काबू नहीं था, वैसे तो कोई भी इन्सान देवता नहीं हो सकता; हरएक में कोई न कोई कमज़ोरी या नुक्स तो होता ही है, लेकिन रहीम अपने जीवन में हर दृष्टि से ऊंचे चरित्र का आदमी था। यों हंसी-मज़ाक करना उसकी तबीयत का अंग ज़रूर था, लेकिन उसने कभी किसी-का बुरा नहीं चाहा, लेनदेन के मामले में बहुत ईमानदार था। इतने साल नौकरी की तो भी पूरी वफादारी के साथ।

होटल में रहीम सभी कुछ था—यानी मैनेजर भी, रसोइया भी, बैरा भी और ज़रूरत पड़ने पर झाड़ू भी दे लेता था। वैसे उसने दो-चार कश्मीरी लड़के नौकर रख रखे थे—झाड़ू देने के लिए, कमरों की सफाई करने के लिए, बावर्चीखाने में उसका हाथ बंटाने के लिए, मुसाफिरों को चाय, खाना पहुंचाने के लिए। लेकिन ये लड़के उड़ते पंछी होते। आते, चार-छः महीने रहते और फिर फुर्र से उड़ जाते। इन सब नौकरों के होते हुए भी रहीम खास-खास खाने खुद ही तैयार करता था। जब कभी कोई ऊंची नाक वाला साहब आ निकलता तो उसकी सेवा भी रहीम खुद ही करता था, क्योंकि बैरागिरी की कला में रहीम पक्का उस्ताद था।

रहीम ने इसका नाम कारोनेशन होटल रखा। उसे कारोनेशन का मतलब मालूम नहीं था, लेकिन एक पढ़े-लिखे आदमी की सलाह

से उसने यह नाम रख लिया। इस होटल में मुसाफिरों का तांता नहीं बंधा रहता था, बल्कि अक्सर कमरे खाली पड़े रहते; मगर रहीम का जीवन बड़े मज़े में गुज़र रहा था; क्योंकि उसकी बीवी तो बीस साल पहले ही मर चुकी थी, बाल-बच्चे थे नहीं, इसलिए थोड़े में भी उसका शानदार गुज़ारा हो जाता। गुज़ारा क्या, बल्कि तीन-चार साल के अन्दर उसने खासी रकम भी जमा कर ली थी।

अब उसका जीवन बिल्कुल हमवार चल रहा था। वह सुबह पांच बजे ही जाग उठता और भट्ठी जलाकर सबसे पहले पानी की केतली उसपर रख देता ताकि जो लोग उठते ही चाय पीने के आदी हैं उन्हें एक-एक प्याला चाय मिल सके। उसके बाद वह अपने ग्राहकों की संख्या के अनुसार थोड़ी-थोड़ी चीज़ें दोपहर के खाने के लिए तैयार करता। इस बीच में सुबह नौ बजे के लगभग नाश्ता-पानी होता। बाद में शाम की चाय और खाने का प्रबन्ध किया जाता।

दिन ढलते ही रहीम भी अपनी लालपरी की बोतल निकाल-कर रसोईघर में हो बैठ जाता। रसोईघर काफी बड़ा था। उसके एक कोने में बड़ी खिड़की के पास उसने मेज़-कुर्सी रख रखी थी। मेट यानी सहायक रसोइया, जो अक्सर कोई पहाड़ी लौंडा ही होता था, सीख-कबाब और शाही कबाब सेंक-सेंककर गरमागरम उसे पहुंचाता रहता। रहीम बहुत बड़ा पियक्कड़ तो न था। वह अक्सर दो पेग ही पीता, या कभी मूड आ जाने पर हद से हद तीन पेग। वह केवल बेहतरीन अंग्रेज़ी शराब ही पीता था। धीरे-धीरे चुस्कियां लेता और फिर कबाब का टुकड़ा मुंह में रख लेता। उसकी नज़र खिड़की के बाहर फैली हुई पहाड़ियों की ढलानों पर घूमती रहती और वह अपने ही ख्यालों में मग्न एक-डेढ़ घंटा इसी तरह गुज़ार देता। फिर वह उठकर खाने के हॉल में जाता। अक्सर वहीं मुसाफिर बैठकर खाना खाते, क्योंकि वहां पर रहीम की लच्छेदार बातें सुनने को मिलतीं।

रहीम एक बार किसी साहब के साथ विलायत तक का चक्कर

लगा आया था। वहां से जर्मनी और फ्रांस भी गया, मिस्र में भी पहुंचा। मतलब यह कि जहां भी उसका मालिक जाता, वहीं रहीम भी जाता। चुनांचे अब वह अक्सर इस तरह बात शुरू करता : जब मैं जर्मनी में था···या जब मैं कैरो में था···

हॉल में बैठे हुए मुसाफिर बहुत धीरे-धीरे और चटखारे ले-लेकर खाना खाते, क्योंकि रहीम की बातों में ऐसा जादू होता था कि उन्हें तेज़ी से भोजन करना भूल जाता। वे कभी मुस्कराते, कभी कहकहे लगाते और कभी कोई प्रश्न भी पूछ बैठते।

अपनी इस गप्पबाज़ी में रहीम की नज़र हर मेज़ पर रहती थी। किसीके पास फुलका न होता तो वह नौकर को आवाज़ देता या कोई भी चीज़ कम हो जाती तो वह मंगवा देता। खाने-पकाने में अपनी उस्तादी के किस्से भी वह चटखारे ले-लेकर सुनाया करता था। खाने की बातें करते समय तो सचमुच ही वह बहुत ऊंचा उड़ने लगता। जब वह कहता कि साहब फलां नवाब साहब को जब मैंने शाही टुकड़ा बनाकर खिलाया तो वे उंगलियां चाटते रह गए। फलां साहब को मीट-पुलाव खिलाया तो वे बोले, "वेल मिस्टर रहीम, हमने ऐसा टेस्टी पुलाव कभी नहीं खाया।" तब मैं अर्ज़ करता कि हज़ूर, आप सारा मीट-पुलाव तो खा गए लेकिन आपको इस बात का पता नहीं चला कि इन चावलों में मीट का एक टुकड़ा भी नहीं था।

रहीम की यह बात सुनकर सभी खाने वाले चौंक उठते। कोई पूछ बैठता, "लेकिन रहीम मियां, यह कैसे हो सकता है कि गोश्त के बिना ही मीट-पुलाव तैयार हो जाए ?"

"बहुत अच्छा ! कल यही तमाशा रहेगा। कल मैं आपको ऐसा मीट-पुलाव खिलाऊंगा जिसमें आपको गोश्त के टुकड़े नज़र आएंगे। खाने पर भी आपको यही मालूम होगा कि आप गोश्त खा रहे हैं, लेकिन दरअसल वे गोश्त के टुकड़े किसी और ही चीज़ के बने होंगे। वे किस चीज़ के होंगे यह आप खुद ही पता लगाकर बताइएगा। याद रखिए कि आज तक मुझे कोई यह पहचानकर बता नहीं सका

कि गोश्त के टुकड़े मैं किस चीज़ से बनाता हूं।"

यह सुनकर सब लोग चकित रह जाते। और फिर रहीम खाना पकाने की बारीकियों पर प्रकाश डालने लगता। वह कहता, "साहब, बेहतरीन बावर्ची की बस एक ही पहचान है। वह यह कि वह चावल कैसे बनाता है। जो बावर्ची चावलों को संभाल ले जाए, मैं उसके हाथ चूम लेता हूं।"

तब वह अपनी छोटी-छोटी चमकदार आंखों से वहां बैठे हुए लोगों का जायज़ा लेता। फिर वह अपनी ठुड्डी पर उगी हुई छोटी-सी बकरानुमा दाढ़ी को खुजलाते हुए कहता, "खाना पकाना केवल आग का खेल है। जो बावर्ची यह जानता है कि किस चीज़ को पकाने के लिए कितनी आंच की ज़रूरत है—न कम न ज़्यादा, बस वही असली बावर्ची है; वही मज़ेदार खाना पका सकता है।"

कुछ तो ग्राहकों पर उसकी बातों का ही रोब जम जाता और बाकी रोब रहीम के हाथ का पका हुआ खाना खाकर जम जाता।

एक शाम जबकि रहीम बावर्चीखाने के कोने में मेज़ पर बोतल खोले व्हिस्की की चुस्कियां ले रहा था और सीख-कबाब के टुकड़े उसके मुंह में बताशे की तरह घुल रहे थे तो वह खूब मग्न हो गया। वह अक्सर कहा करता था कि सीख-कबाब का यह मतलब नहीं कि उसे खाने पर यूं मालूम हो कि जैसे लोहे की सलाख चबा रहे हैं, बल्कि सीख-कबाब ऐसा नरम होना चाहिए कि मुंह में रखते ही बताशे की तरह घुल जाए।...

और जब वह अपने सीख-कबाब को मुंह में घुलते देखता तो उसका दिल झूम उठता। वह अपने-आप ही खुद को शाबाशी देते हुए कहता, "वाह रहीम मियां, सीख-कबाब तैयार करना तो बस तुम्हीं पर खत्म है।"

इतने में मुर्गियां ज़ोर से कुड़कुड़ाईं। बावर्चीखाने से ज़रा दूर हटकर खासा बड़ा मुर्गीखाना था, जिसमें कल्लू ने कई मुर्गियां और मुर्गे पाल रखे थे, ताकि अंडे और चूज़े के मांस की कमी महसूस न हो। जब उसने मुर्गियों के कुड़कुड़ाने की आवाज़ सुनी तो चिल्ला-

कर बोला, "अरे हातो ! भागकर जा देख तो, ये मुर्गियां इतने ज़ोर-ज़ोर से क्यों कुड़कुड़ा रही हैं। कहीं कोई बिल्ला मुर्गीखाने में तो नहीं घुस आया।"

रसोईघर कोठी के पिछवाड़े बना हुआ था। उधर कोई रास्ता या पगडंडी भी नहीं थी इसलिए दो घड़ी बाद जब उसने खिड़की के शीशों में से एक ऊंचे-लम्बे युवक की शक्ल देखी तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। और फिर उसकी आंखें फैल गईं, क्योंकि उस युवक के पीछे से एक लड़की के चेहरे की झलक यों दिखाई दी जैसे बादल की ओट से एकाएक चांद निकल आता है।

३

होंठों तक पहुंचा हुआ रहीम का गिलास वहीं रुक गया और उसकी उंगलियां उसकी बकरानुमा दाढी के बालों को छूने लगीं। अब उसे पता चला कि मुर्गियां क्यों इतने ज़ोर-ज़ोर से कुड़कुड़ा रही थीं। मुर्गीखाना उधर ही को था जिधर से वह युवक और लड़की आए थे। उन्हें देखकर रहीम को सचमुच ही बड़ा आश्चर्य हुआ। इसका सबसे बड़ा कारण तो यह था कि उस किस्म के युवक और उस किस्म की लड़कियां इधर देखने में नहीं आती थीं। वे सरहद के इलाके के रहने वाले थे।

इधर रहीम आंखें झपका-झपकाकर उन्हें देखता रहा, उधर वह युवक खिड़की के शीशों में से उसे झांककर देख रहा था। आखिर रहीम ने हाथ से इशारा किया कि वह दूसरे रास्ते से अन्दर चला आए। वह युवक खिड़की के आगे से टल गया लेकिन उसकी शक्ल से साफ पता चल रहा था कि रहीम के इशारे उसकी समझ में ठीक तरह नहीं आए। चुनांचे रहीम ने पहाडी नौकर से कहा, "अरे रहने दे, मुर्गीखाने में कोई बिल्ली-विल्ली नहीं घुसी है! यह जो झांक रहे

थे न खिड़की में से, जाओ उन्हें बुलाकर मेरे पास लाओ।"

कश्मीरी लौंडा नाक सुड़सुड़ाता हुआ एकदम भागा। पल-भर बाद वह लौट आया। वह अकेला बावर्चीखाने में घुसा तो रहीम कुछ पूछने ही लगा था कि दरवाज़े में उस ऊंचे कद के गोरे-चिट्टे युवक की शक्ल दिखाई दी। खिड़की में से देखते समय रहीम को इस बात का अन्दाज़ा नहीं हो सका था कि वह युवक दरअसल इतना लम्बा है।

यह तो साफ ज़ाहिर था कि वह पठान था। उसने अन्दर आते ही पहली बात यही कही, "मेरा नाम शहबाज़ है। शहबाज़ खान।"

रहीम उसे सिर से पांव तक देखता ही रह गया। बड़ा खब-सूरत चेहरा था शहबाज़ का। बेशक चेहरा कुछ लम्बूतरा था, लेकिन फिर भी बड़ा हसीन था। ऊंची नाक, घने अबरू, नीचे बड़ी-बड़ी आंखें। उसकी मसें अभी भीग रही थीं। मज़बूत गर्दन, सिर पर कुल्ला और उसके ऊपर सिल्क की बंधी हुई लुग्गी, जिसका एक सिरा उसके कान से नीचे तक लटका हुआ उसके कन्धे को छू रहा था और दूसरा सिरा ऊपर की ओर हवा में उठा हुआ था। काफी बड़ी घेरेदार लट्ठे की सलवार, गले में तंग आस्तीनों वाली फूली-फूली कमीज़, पांव में भारी पेशावरी चप्पल पहने वह नाप-नापकर कदम रखता हुआ अन्दर दाखिल हुआ। उसके हाथ में एक हल्की-फुल्की लाठी भी थी।

शहबाज़ के पीछे चन्द कदम पर वह लड़की चली आ रही थी। उसका चेहरा गोल था, जैसे पकी हुई खुरमानी। उसके काले बोझिल बाल सिर के बीचोबीच से दो भागों में बंटे हुए थे। उसकी मांग यूं दिखाई देती थी जैसे काले बादलों में सफेद-सफेद बगलों की कतार। उसके अबरू कानों तक खिंचे हुए थे, झुकी हुई पलकें इतनी घनी थीं कि लगता था कि मारे बोझ के पपोटे ऊपर नहीं उठ पाते। उसकी नाक सुबुक थी, होंठ भरपूर थे और उसकी चिकनी ठुड्डी पर एक बहुत कम गहरा नन्हा-सा गड्ढा था। उसके कानों में सोने की बालियां और गले में चांदी की हंसली थी। उसकी

कमीज़ काले रंग की और सलवार सफेद लट्ठे की थी। काले कपड़े में से उसका बदन जगमग-जगमग कर रहा था।

निकट पड़ी हुई एक बेंच की ओर इशारा करते हुए रहीम ने कहा, "बैठो भाई!"

शहबाज़ एक हाथ में लाठी को तौलकर और दूसरे हाथ से बेंच को छूते हुए बैठ गया। वह लड़की भी ज़रा पीछे हटकर यूं बैठी जैसे वह शहबाज़ की ओट में रहना देखना चाहती हो।

शहबाज़ की दहकती हुई आंखों को देखकरखामखा डर लगता था। और अगर कहीं उसके साथ लड़की न होती तो रहीम यह समझे बिना न रह सकता कि वह कोई डाकू था जो उसे लूटने आया था। लेकिन औरत का साथ देने से मर्द शरीफ नज़र आने लगता है। या कम से कम ऐसा मर्द घरेलू किस्म का दिखाई देता है। रहीम की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि वह उससे बात-चीत कैसे शुरू करे। बेशक वह इस बात का इन्तज़ार कर सकता था कि शहबाज़ खुद ही बातचीत छेड़े। लेकिन खूबसूरत होने के बावजूद उसका इतना रोब था कि रहीम को उसके सामने चुपचाप बैठे रहना असम्भव-सा लगा। इसके साथ ही उसने यह भी महसूस किया कि उसे खान से कोई ऐसा प्रश्न नहीं करना चाहिए जिससे कि वह भड़क उठे। उसने तो उसके अन्दर घुसने से पहले शराब की बोतल और प्याला भी छुपा दिया था, क्योंकि वह जानता था कि शराब मुसलमानों में हराम है और अगर शहबाज़ जैसा आदमी इसे नापसन्द करे तो उसकी मुसीबत ही आ सकती थी। इतना तो उसने पहले ही भांप लिया था कि वह युवक मुसलमान था।

जो कुछ भी हो, रहीम जीवन-भर नौकरी ही तो करता था। उधर शहबाज़ यों दिखाई देता था जैसे किसी बहुत बड़े कबीले का सरदार हो। रहीम को कोई बात नहीं सूझ रही थी तो करीब-करीब यही हालत खान की भी दिख रही थी।

उस अपरिचित जोड़े के बारे में बीसियों प्रश्न उठ सकते थे। वे

कौन थे, कहां से आए थे, कहां को जा रहे थे, लड़की कौन थी, उन दोनों का आपस में क्या सम्बन्ध था, और फिर बिना सामान के वे इस जंगल में क्यों घूमते फिर रहे थे ? लेकिन इनमें से कोई भी बात पूछने का रहीम को साहस नहीं हुआ। लेकिन चुप रहने से भी उसका दम घुटता था···चुनांचे उसने ज़रा प्यार-भरे स्वर में कहा, "सर्दी बहुत है खान !"

शहबाज़ की नज़रें चारों ओर घूम रही थीं। उसकी बात सुनकर उसने फौरन अपनी दहकती हुई आंखों से रहीम की ओर देखा और बोला "खो, आप ठीक कहता है।"

यह कहकर शहबाज़ के होंठ यों बन्द हो गए जैसे वह फिर कभी नहीं बोलेगा। रहीम के मन में खुतबुद-खुतबुद हो रही थी। उसका दिमाग चकरा रहा था कि अब वह और क्या बात कहे। उस कमरे में बड़ी अजीब-सी खामोशी छाई हुई थी। इतने में रहीम की नज़र भट्ठियों की ओर गई तो कोयलों पर रखी हुए पानी की केतली में से बल खाकर उठती हुई भाप को देखकर रहीम ने कहा, "खान ! चाय या कॉफी पियोगे ?"

खान ने फिर उसकी आंखों में आंखें डाल दीं और भारी आवाज़ में बोला, "कॉफी क्या होता है ?"

"कॉफी ? कॉफी बस कहवे की तरह होता है।"

"अच्छा तो पी लेगा।"

रहीम खुद कॉफी बनाने के लिए उठा। शहबाज़ की एकाएक वहां पर मौजूदगी उसे बड़ी आश्चर्यजनक लग रही थी। उसका मन चाहता था कि वह जल्दी से अपने बारे में सब कुछ बता दे। क्या सचमुच वह किसी कबीले का सरदार था, या सरदार का बेटा था, जो उस लड़की को भगाकर यहां ले आया था। लेकिन ऐसी बात पूछना रहीम के बस में नहीं था। वह चुपचाप कॉफी तैयार करने लगा। इसी काम में लगे-लगे उसने अपनी दाढ़ी के कुछ बालों में फंसी हुई राख को झाड़ते हुए पूछा, "खान ! कुछ खाओगे भी ?"

"अम बूका है।"

यह सुनते ही रहीम ने फिर एकदम शहबाज़ की ओर देखा और उसे बड़ा अजीब-सा लगा, क्योंकि भूखा होने पर भी शहबाज़ की आवाज़ में मर्दानापन था। यह स्वीकार कर लेने पर भी कि वह भूखा था, उसके स्वर में कोई फर्क नहीं आया था। अब तो रहीम पर उसका और भी रोब छा गया। उसने कॉफी के साथ कुछ खाने-पीने की चीज़ें भी उन दोनों के आगे रख दीं और बोला, "खान ! अभी आप इतना-सा नाश्ता कर लीजिए। कुछ देर में खाना भी तैयार हो जाएगा।"

"आचा !"

इसका मतलब यह था कि वे रात भी यहीं टिकने के लिए आए थे। वरना खान रात के खाने के लिए हामी नहीं भरता।

जब वे दोनों नाश्ता करने में मग्न थे तो रहीम ने फिर कुर्सी पर बैठते हुए धीमे से पूछा, "खान ! क्या आप लोग इधर घूमने को आया है ?"

खाते-खाते एकदम खान का मुंह रुक गया और उसने अधखुले मुंह से रहीम की ओर यूं देखा जैसे वह उसकी बात समझ न पाया हो। रहीम ने फौरन ही अपने प्रश्न को दोहराना आवश्यक समझा कि कहीं खान उसकी बात का कुछ उल्टा मतलब ही न समझ ले, "मैं पूछ रहा हूं खान कि आप लोग क्या इस देश में घूमने-फिरने को आया है ?"

इसपर शहबाज़ ने ज़ोर-ज़ोर से अपने सिर को ऊपर-तले दो-तीन झटके दिए और बोला, "आं···अम लोग आप लोग का मुल्क का सैर करने आया है।"

शहबाज़ का यह उत्तर सुनकर रहीम ने इधर-उधर देखा। क्योंकि अब प्रश्न यह पैदा होता था कि अगर वे घूमने आए हैं तो फिर उनके पास कुछ सामान भी होना चाहिए। लेकिन एक लम्बी-सी पोटली के सिवा, जिसे पार्सल कहना चाहिए, उनके पास और कोई सामान नहीं था। वह पार्सल भी लड़की ने अपनी बगल में दाब रखा था।

रहीम ने अन्दाज़ा लगाया कि इतने लम्बे पार्सल में कुछ कपड़े या कुछ गहने भी हो सकते हैं। रहीम ने दबे स्वर में पूछा, "तो आपके पास सामान बस इतना ही है ?"

यह कहते-कहते रहीम ने मैले-से कपड़े के उस पार्सल की ओर इशारा किया। शहबाज़ ने भी पार्सल की ओर देखा और जल्दी से बोला, "नहीं, नहीं, इसमें अमारा कोई सामान तो नहीं है। इसमें तो मेरा रबाब है।"

रहीम जानता था कि पठान लोग तारों के बने हुए इस साज़ यानी रबाब को बजाया करते हैं। रबाब के स्वरों में एक विशेष प्रकार की मधुरता के साथ गम्भीर बेचैनी भी पाई जाती है। जब इसके स्वर से मिलाकर कोई पठान अपनी लहकदार आवाज़ में गाता है तो सुनने वालों के हृदय में न जाने कैसी-कैसी भावनाएं उभरती हैं। और धीरे-धीरे ये भावनाएं सागर की लहरों की तरह एक तूफान मचा देती हैं।

शहबाज़ की शक्ल से ही यह बात साफ पता चल रही थी कि उसके मन में भी बेचैनी हो उठी है। वह जानता था कि वह रहीम के मन में उठे हुए प्रश्न का उचित उत्तर नहीं दे पाया था। चुनांचे कुछ रुक-रुककर उसने कहना शुरू किया, "अम घूमने निकला था। जब अम मीरपुर में पहुंचा तो अमारा सारा सामान चोरी ओ गया। फिर वआं से अम इदर चला आया।"

रहीम शहबाज़ के चेहरे की ओर देख रहा था। उसे साफ पता चल गया कि वह झूठ बोल रहा है, लेकिन वह उसके मुंह पर उसे झूठा नहीं कह सकता था।

रहीम अपने ही विचारों में गुम था कि शहबाज़ ने फिर कहा, "देको बाबा, अम कुछ दिन यआं पर कैय्याम करना चाहता है। क्या तुम अमको रखेगा ?"

खूबसूरत होने पर भी शहबाज़ से रहीम को डर लग रहा था, क्योंकि वह उसे बड़ा भयंकर नज़र आता था, लेकिन भयंकर नज़र आने पर भी रहीम को शहबाज़ की आवाज़ बिल्कुल बच्चों की सी

लगी। और फिर शहबाज़ ने उसे बाबा कहकर पुकारा था। वह जानता था कि बाबा बड़े को ही कहते हैं। बाबा उसे ही कहा जाता है जिसका सम्मान करना हो। उसके हृदय में उन दोनों के लिए सहानुभूति उत्पन्न हुई। वह कहना चाहता था कि बेशक वे उसके यहां ठहरें, खाएं-पिएं और जब तक चाहें, रहें। लेकिन इतने में ही एक बार फिर उसकी नज़र लड़की पर जा पड़ी। वह भी इतनी खूबसूरत थी कि बड़ी आसानी से यह समझा जा सकता था कि वह शहबाज़ की बहन होगी। लेकिन यह कैसे हो सकता था कि कोई नौजवान पठान अपनी जवान बहन को लेकर दूसरे देश में घूमता फिरे। या फिर उसे उसकी बीवी समझा जाए, लेकिन जिस तरह वे बिना किसी सामान के इधर-उधर मारे-मारे फिर रहे थे उससे अन्दाज़ा लगता था कि ज़रूर वे दोनों प्रेमी हैं और घर से भागे हुए हैं। लड़की की आंखें झुकी हुई थीं और उसके लाल-लाल गालों पर उसकी पलकों के शर्मीले साये थिरक रहे थे। उसकी झुकी-झुकी आंखों से ही इस बात का साफ पता चलता था कि वह शहबाज़ की ब्याहता बीवी नहीं थी। अब रहीम के मन में यही दुविधा थी कि वह लड़की के बारे में कैसे पूछे। पूछने का अन्दाज़ ऐसा होना चाहिए कि जिससे न तो शहबाज़ को और न उस लड़की को कुछ भी परेशानी महसूस हो। चुनांचे रहीम ने संभल-संभलकर और दिमाग में अच्छी तरह सोच-विचारकर बात यूं उठाई, "शहबाज़ खान···यह लड़की···मेरा मतलब है कि यह···"

शहबाज़ ने उसकी बात बीच में ही काटते हुए और अपने होंठों पर एक फीकी-सी मुस्कान उत्पन्न करते हुए उत्तर दिया, "यऊ लड़की, ओ इस लड़की का नाम ज़रीना अै···यऊ लड़की बी अमारे सात अै···"

खान ने लड़की का नाम बता दिया और यह भी कह दिया कि लड़की उसके साथ है तो फिर बात क्या बनी! रहीम के पल्ले तो कुछ न पड़ा। मगर उसने सोचा कि उसे इन बातों से क्या लेना! कब तक वे अपने सम्बन्ध को छिपाएंगे। मालूम यह होता था कि

वे दुनिया की नज़रों से छिपकर कुछ दिन···उसके पास गुज़ारने के लिए आए हैं। एक न एक दिन तो उनकी असलियत का पता चल ही जाएगा।

यह बात ज़ाहिर थी कि शहबाज़ लड़की से अपना सम्बन्ध अभी बताना नहीं चाहता था। अगर उसका ऐसा विचार न होता तो वह लड़की के नाम के साथ ही उसकी असलियत भी बता देता। रहीम को उनपर दया आ रही थी। वह उन्हें खामखा परेशान भी नहीं करना चाहता था।

इतने में लौंडे ने आकर खबर दी, "रहीम मियां, छः नम्बर साहब खाना मांग रहे हैं।"

छः नम्बर में ऊंची नाक वाला एक देशी साहब रुका हुआ था। खाने-पीने का शौकीन था। उसका मोटा बिल बनता था इसलिए रहीम उसे खुद ही खाना खिलाता था। अब उसने शहबाज़ की ओर देखकर कहा, "अच्छा खान साहब ! अब हमारे काम-काज का वक्त है इसलिए तुम दोनों आराम करो। कुछ देर बाद खाना मिलेगा तब खाना खाकर तुम लोग सो जाना। अब कल सुबह और बातचीत होगी। ऐ लौंडे, खान के लिए साथ वाली कोठरी में दो चारपाई डाल दो।"

खान ने बात काटकर कहा, "ओ बाबा ! अम दोनों एक कोठरी में नहीं सोएगा, लड़की अलग कोठरी में सोएगा।"

यह सुनकर रहीम चौंका। उसने पलभर को दोनों की ओर बारी-बारी से देखा और फिर सिर हिलाकर बोला, "अच्छा खान, दोनों का अलग इन्तज़ाम हो जाएगा।"

४

रहीम चाहे रात को कितनी देर तक जागता रहे, लेकिन सुबह सूर्य

निकलने से पहले ही उठ बैठता था। पानी के लोटे में रात ही से भिगोए हुई दातुन निकालकर वह मुंह में डाल लेता और उसे चबाता हुआ पहले तो सीधे मुर्गीखाने में जाता, जिन-जिन मुर्गियों ने अंडे दे रखे होते थे उन्हें अपनी जगह से हटाकर वह सब अंडे इकट्ठे करता और उन्हें एक थैले में डाल लेता। तब वह अपने बगीचे में जाता, जहां उसने कई किस्म की सब्ज़ियां बो रखी थीं। इन सब्ज़ियों से उसके होटल का काम तो नहीं चलता था, लेकिन आज छोटी-मोटी चीज़ें जैसे हरा धनिया, टमाटर, पुदीना, हरी मिर्च, मूली आदि उसे यहीं से मिल जातीं। दूसरी सब्ज़ियां वह आठ-दस मील दूर शहर की सब्ज़ीमंडी से लाता था। वह अक्सर हफ्ते में दो बार सब्ज़ीमंडी जाता और तीन-चार दिन के लिए इकट्ठी सब्ज़ियां खरीदकर ले आता।

आज भी रहीम ने यही किया। आंख खुलते ही अपने टोंटी-दार लोटे में हाथ डाल उसने दातुन निकाली और कानों पर मफलर लपेटकर दातुन चबाता हुआ और हाथ में थैला घुमाता हुआ वह कोठी से परे कुछ दूरी पर मुर्गीखाने में पहुंचा। उसे देखकर मुर्गियां कुड़कुड़ाने लगीं और मुर्गे बांग देना बन्द करके आड़ी-तिरछी नज़रों से उसे देखने लगे और फिर कुड़-कुड़ करते हुए परे भाग गए। उसने अंडों पर हाथ डाला तो छूने से अब भी वे गर्म मालूम हो रहे थे। उसने सब अंडे इकट्ठे किए और उन्हें थैले में डालकर मुर्गीखाने का दरवाज़ा खुला छोड़ दिया। क्योंकि अब हर ओर प्रकाश फैल रहा था, अगरचे सूर्य के उगने में अभी कुछ देर थी। अब उसे विश्वास था कि कोई बिल्ला मुर्गीखाने में नहीं घुस पाएगा। मुर्गियां उसे दूर से ही देखकर शोर मचाने लगेंगी।

मुर्गीखाने से निकलकर वह बाग में पहुंचा। कुछ देर तक हरी-भरी क्यारियों को देखता रहा और फिर हाथ मे खुरपा लेकर वह क्यारियों की गुड़ाई करने लगा। उसके बाज़ू पतले-पतले थे, लेकिन हाथों में काफी शक्ति और फुर्ती थी। इधर उसके हाथ चल रहे थे, उधर उसके दिमाग में शहबाज़ खान और उस लड़की के बारे में

कई किस्म के विचार दौड़ रहे थे। वे दोनों ही सीधे-सादे मालूम होते थे। रहीम के मन में उनके लिए कुछ अजीब-सा प्यार जाग उठा था। लेकिन इसके साथ ही एक धुंधला-सा डर भी मन की गहराइयों से उभर आता था। जो वे दोनों घर से भागे हुए थे तो काफी झगड़े की बात भी थी। हो सकता था कि लड़की का बाप या दूसरे रिश्तेदार लड़की का पता लगाते-लगाते वहां पहुंच जाएं और फिर न जाने क्या हो।

रहीम के लिए यह भी तो एक समस्या थी कि उन दोनों के साथ उसका व्यवहार कैसा हो। जब तक वे अपने बारे में उसे सब कुछ बता न दें, तब तक वह कर भी क्या सकता था! आखिर उसने दबे स्वर में अपने-आपको यह कहकर सहारा दिया—"अच्छा वही होगा जो मौला को मंज़ूर होगा।"

उन छोटे-छोटे खेतों में कुछ देर काम करने के बाद उसने अपनी ज़रूरत के अनुसार कुछ हरी सब्ज़ियां अपने थैले में भरीं और वापस लौटा। होटल के आसपास कुछ फूलों की क्यारियां भी थीं। मुसाफिर अक्सर वहां कुर्सियां डालकर बैठ जाते और इर्दगिर्द के दृश्यों का आनन्द लेते या आपस में गप्प हांकते। उनमें से कुछ टहलने को निकल जाते और झरने के पास खड़े होकर इसके मनों पानी को नीचे घाटी में गिरते देखते रहते। घाटी में चलते-फिरते लोग कीड़े-मकोड़ों की भांति नज़र आते और जिस जगह झरने का पानी नदी में गिरता था वहां बहुत नन्ही-नन्ही बूंदों के लाखों-करोड़ों छींटे उड़ते तो यूं नज़र आता जैसे उनका एक बादल-सा बन गया हो। कभी-कभी तो इस बादल में इन्द्रधनुष के सातों रंग भी दिखाई देने लगते। झरने का पानी पहाड़ों के बीच में से करवटें लेता हुआ आता और पूरे ज़ोर से सिर पटकता हुआ चट्टानों से टकराता, शोर मचाता घाटी में बहने वाली उस नदी में जा गिरता। यूं लगता था जैसे वह झरना जीता-जागता हो, उसके मन में कोई बेचैनी हो, जिसके कारण वह इतनी तुन्दी से व्याकुल होकर आगे ही आगे लपकता और बढ़ता चला जाता था।

लौटते समय रहीम ने देखा कि होटल के पास, फूलों की एक क्यारी के निकट, वह मोटा जोड़ा खड़ा है, जो कुछ दिनों से उसके होटल में ठहरा हुआ था। एक लालाजी थे, उनकी आयु पचास साल से ऊपर होगी और एक उनकी ललाइन थीं, जो पैंतालीस वर्ष के लगभग होंगी। वे दोनों इतने मोटे थे कि लगता था जैसे दो तरबूज़ हों, जिनके टांगें निकल आई हों। लेकिन दोनों में अत्यधिक प्यार था। सारा दिन ललाइन फूल की तरह खिली रहतीं और लालाजी बुलबुल की तरह उनके इर्दगिर्द फुदकते फिरते। लालाजी ने खुद ही रहीम को बताया था कि वे अपनी एक बेटी और एक बेटे की शादी करके फुर्सत पा चुके थे। उनके दोनों बच्चे अपने-अपने घर में सुखी हैं। तो फिर हमने सोचा कि अब हम भी दुनिया के झंझटों को भूलकर कुछ दिन चैन के साथ काटें···इसीलिए वे सबसे अलग-थलग इस होटल में आकर ठहरे थे। रहीम उनकी बातें सुनकर मुस्करा दिया। अब उसे किसी बात पर आश्चर्य नहीं होता था क्योंकि उसके पास तो भांति-भांति के लोग आते थे। उन सबके अपने-अपने विचार और अपनी-अपनी आदतें होती थीं। रहीम को तरह-तरह के लोगों की बातें सुनने का मौका मिलता रहता था।

जब वह लालाजी से करीब पन्द्रह कदम इधर रह गया तो अचानक उनकी नज़र इसपर पड़ी। रहीम ने आंखें मिलते ही हाथ उठाकर आदाब अर्ज़ की। इसपर लालाजी अपनी आदत के अनुसार फुदकते हुए उसकी ओर बढ़े। इतनी दूर चलने ही से उनका दम फूल गया और वे हांफने लगे। मालूम होता था कि वे कोई खास बात कहने जा रहे थे, परन्तु उनके मुंह से केवल इतना ही निकला, "रहीम मियां···रहीम मियां···"

"कहिए हज़ूर ! रात आप आराम से तो सोए ?"

"अरे भई, रहीम मियां, रात मैं तो आराम से सोया रहा, लेकिन अपनी ये ललाइन बुरी तरह से डर गई थीं।"

रहीम को आश्चर्य हुआ। उसने दातुन मुंह से निकालकर जरा परे ज़मीन पर थूकने के बाद पूछा, "क्यों लालाजी, खैरियत तो

है न ? आप इतने घबराए हुए क्यों हैं ?"

लालाजी ने ललाइन की ओर हाथ से इशारा करते हुए कहा, "अरे रहीम मियां, मैं कहां घबराया हुआ हूं! घबराई हुई तो हमारी ललाइन हैं।"

"आखिर उनके लिए भी घबराने की क्या बात है ?"

लालाजी ने ज़रा आंखें फैलाकर और मुंह गोल करते हुए उत्तर दिया, "अरे भई रहीम मियां, रात कुछ बात ही ऐसी हो गई थी। मैं तो कहता हूं कि यहां कोई ज़रूर गोरखा चौकीदार होना चाहिए।"

"गोरखा चौकीदार ? वह क्यों ? यहां तो कभी एक तिनके की भी चोरी नहीं हुई।"

"अजी नहीं हुई तो हो जाएगी !"

रहीम को आश्चर्य हुआ। उसने अपनी दाढ़ी के बालों को हाथ से छूते हुए पूछा, "अजी मैं कहता हूं चोरी हो भी क्योंकर ?"

"रहीम मियां ! मैं तो तुम्हारे भले की कहता हूं। जब चोरों ने इधर चक्कर लगाने शुरू कर दिए तो एक रोज़ चोरी भी ज़रूर हो जाएगी।"

"आपने किस चोर को देखा, ज़रा मैं भी तो सुनूं !"

"अजी रात को एक बड़ा लम्बा-चौड़ा पठान हमारी खिड़की के आगे वाले पेड़ों के नीचे टहलता रहा !"

"पठान ?" यह कहते-कहते रहीम को शहबाज़ का ख्याल आ गया तो वह खिलखिलाकर हंस दिया, "अच्छा तो लालाजी, आप उस लम्बे, ऊंचे पठान का ज़िक्र कर रहे हैं जो कल रात ही तो आया है।"

'रात को आया है ? क्या कहते हो रहीम मियां ?"

"अजी वह अपना ही आदमी है !"

"तुम्हारा कोई रिश्तेदार है ?"

"हां-हां, यही समझ लीजिए। बस यह समझिए कि मेरा भांजा लगता है वह।"

यह सुनकर लालाजी के मन का बोझ हल्का हो गया। उनके चेहरे का पीलापन दूर हो गया और गालों की सुर्खी वापस आ गई। तब उन्होंने ललाइन की ओर देखकर भरपूर स्वर में कहा, "देखा···खामखा डर रही थीं, घबरा रही थीं। अरे रहीम मियां, मैंने इन्हें बड़ी तसल्ली दी, लेकिन यह भला डरे बिना कैसे रहतीं! जीवन में पहली बार तो पठान देखा।"

यह सुनकर ललाइन एकदम गरम हो उठीं और उसी गरमी में लुढ़कती हुई आगे बढ़ीं और दोहत्थड़ ऊपर को उठाकर बोलीं, "मैं कहां डरी थी?···खुद ही तो बुरी तरह से डर गए थे। हाथ-पांव कांपने लगे थे, दांत बजने लगे थे, और फिर उल्टा मुझी पर इल्ज़ाम धर रहे हैं कि मैं डरी थी।"

उन दोनों की यह बातचीत सुनकर रहीम को बडे ज़ोर की हंसी छूटी, लेकिन उसने इसे छिपाने के लिए मुंह पर अंगोछा रखा और वहां से खिसक गया।

लालाजी के याद करा देने से रहीम के मन में उस अपरिचित पठान के बारे में कई किस्म के संदेह और भी ज़ोर से उठ खड़े हुए। उसने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि पुलिस ढूंढ़ती-ढूंढ़ती यहां आ जाए तो इन दोनों के साथ-साथ उसे भी लपेट ले जाए। फिर उसे ख्याल आया कि ज़रा चलकर देखें तो सही कि वह युवक कर क्या रहा है।

वह सीधा स्टोर-रूम की तरफ गया, जहां उसके सोने का प्रबन्ध किया गया था। दरवाज़ा आधा खुला था। उसने झांककर देखा तो शहबाज़ चारपाई पर टांगें पसारे सोया पड़ा था। वह इतना लम्बा था कि चारपाई उसे छोटी पड़ती थी। चुनांचे उसकी पिंडलियों से टांगें चारपाई की सीमा के बाहर निकली हुई थीं। रहीम को ज़रीना नज़र नहीं आई। फिर एकाएक उसे याद आया कि ज़रीना के सोने के लिए तो साथ वाली कोठरी में प्रबन्ध किया गया था। उसने स्टोर-रूम में से बाहर आकर साथ वाली कोठरी पर नज़र डाली तो देखा कि उसके दरवाज़े पर खूब मोटा-सा ताला

लगा है।

यह देखकर रहीम चौंक उठा। उसने सोचा कि आखिर यह मामला क्या है? क्या ज़रीना कहीं खिसक गई है? फिर एकाएक रहीम के मन में एक और ज़्यादा भयंकर विचार आया, कि कहीं शहबाज़ ने ज़रीना का गला घोंटकर मार ही न दिया हो। लालाजी कह रहे थे कि उन्हें रात के समय एक पठान पेड़ों में घूमता दिखाई दिया था।

रहीम फौरन ही उन पेड़ों की ओर चल दिया। वहां शहबाज़ के जूतों के बड़े-बड़े निशान अभी तक नज़र आ रहे थे। पेड़ों से आगे एक ढलान थी। वह उसपर उतरता चला गया। वहां भी उसे शहबाज़ के जूतों के निशान दिखाई दिए, लेकिन अब इनके साथ छोटी जूतियों के निशान भी नज़र आ रहे थे, जिसका मतलब यह था कि रात के समय ज़रीना भी उसके साथ थी। वह काफी दूर बढ़ता चला गया उन चरण-चिह्नों को देखता हुआ; फिर एक जगह जहां घास ज़्यादा थी, वे निशान नज़र नहीं आए।

रहीम बहुत देर तक वहां खड़ा रहा। फिर उसने महसूस किया कि मामला वाकई गम्भीर मालूम होता है। न जाने बैठे-बिठाए क्या मुसीबत उसके सिर पर आने वाली थी। यह सोचकर वह सिर झुकाए धीरे-धीरे क़दम उठाता हुआ होटल की ओर लौटा। उसके मन में आया कि वह फिर लालाजी से बातें करके पता लगाने की कोशिश करे कि उन्होंने रात के समय उस खान की ओर क्या हरकतें देखीं। लेकिन फिर उसने ऐसा करना उचित नहीं समझा, क्योंकि इस तरह लालाजी ज़रूर घबरा उठेंगे और इस घबराहट में वे औरों से भी यही बातें करते फिरेंगे। इस तरह सारे होटल के मुसाफिरों में यह बात फैलाने की बजाय वह क्यों न शहबाज़ ही से पूछताछ करे।

मन में यह विचार धारण कर वह रसोईघर की ओर लौटा।

दूर ही से उसे साज़ बजने की आवाज़ सुनाई देने लगी। ज़रा आगे बढ़कर पूरे खुले दरवाज़े में से उसे शहबाज़ अपनी चारपाई

पर बैठा दिखाई दिया। वही रबाब बजा रहा था।

रहीम को बड़ा आश्चर्य हुआ। यदि उसने ज़रीना का गला घोंट दिया था तो फिर यह रबाब बजाने का क्या मतलब ? जब वह दरवाज़े के निकट पहुंचा तो भी शहबाज़ ने उसे देखा नहीं। वह चारपाई पर घुटनों के बल बैठा हुआ था। रबाब उसकी गोद में था। उसकी आंखें रबाब पर झुकी हुई थीं। उस समय उसके सिर पर कुल्लेदार पगड़ी भी नहीं थी। उसके लम्बे-लम्बे पट्टे गर्दन पर पंखे की तरह फैले हुए थे और उसके दोनों कानों को चूम रहे थे। उसकी नीचे तक बढ़ी हुई कलमें उसके गोरे तमतमाते हुए चेहरे पर बड़ी हसीन नज़र आ रही थीं। इस समय वह अपने देश का कोई बड़ा ही मनमोहक और अनोखा संगीत बजा रहा था। शायद दरवाज़े पर खड़े रहीम का उसे अनुभव हुआ तो एकाएक उसने सिर उठाकर रहीम की ओर देखा। इसके साथ ही उसके हाथ रुक गए और संगीत बन्द हो गया।

शहबाज़ की आंखों में कभी तो तलवार की सी चमक दिखाई देती और कभी यूं लगता जैसे उनमें अंगारे दहक रहे हों। हालांकि इस समय उसके होंठों पर मुस्कान थी, परन्तु वह अपनी आंखों की इस कैफियत को किसी तरह भी नहीं बदल सकता था। दोनों की नज़रें मिलीं। रहीम ने मुस्कराकर पूछा, "कहो खान, रात अच्छी तरह सोए न ?"

यह कहते-कहते रहीम की नज़रें कमरे के चारों ओर घूम गईं कि शायद उसे ज़रीना कहीं नज़र आ जाए। लेकिन उस कोठरी में शहबाज़ के सिवाय और कोई नहीं था।

"अम बोत अच्छी तरह सोया बाबा !..."

शहबाज़ ने यह बात कही तो रहीम को महसूस हुआ जैसे कोई बच्चा बोल रहा हो, जिसे ठीक ढंग से बात करनी भी न आती हो। उसने हिम्मत करके पूछ ही लिया, "क्यों खान, ज़रीना कहां है ?"

यह प्रश्न करते ही रहीम ने एकदम अपनी नज़रें खान के चेहरे

पर गाड़ दीं। वह जानना चाहता था कि खान के चेहरे पर उसकी इस बात का क्या असर होता है। लेकिन शहबाज़ ने उसी बेफिक्री से कहा, "वह सोता अै।"

यह सुनकर रहीम को आश्चर्य हुआ, क्योंकि कमरे में तो वह कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। उसने फिर पूछा, "कहां सो रही है वह ?"

शहबाज़ ने यूं ही हाथ से इशारा करके कहा, "वआं सोताअै।"

रहीम के शरीर में सनसनी की एक लहर-सी दौड़ गई। कहीं खान का यह मतलब तो नहीं कि दूर जंगल में उसने ज़रीना का गला घोंटकर उसे सदा की नींद में सुला दिया हो। उसे खान से डर भी लगता था। वह जानता था कि पठान बिगड़ेदिल होते हैं। कहीं ऐसा न हो कि उसकी खोपड़ी उलट जाए। इसलिए उसने बड़े नर्म लहजे में धीरे से कहा, "खान साहब ! लड़कियों को इतनी देर तक तो नहीं सोना चाहिए। उन्हें तो इस समय तक उठकर कोई काम-काज करना चाहिए। वैसे भी मेरा विचार यह है कि आप दोनों अभी से नाश्ता कर लें और चाय भी पी लें ; क्योंकि फिर थोड़ी देर में जब मुसाफिर नाश्ता मांगने लगेंगे तो आप लोगों के लिए मुश्किल हो जाएगी।"

यह सुनकर शहबाज़ ने एक बड़ी-सी चाबी घुमाकर उसकी ओर फेंकी और बोला, "अचा तो तुम ई उसको जगा दो।"

चाबी देखकर रहीम की समझ में आया कि ज़रूर ही ज़रीना उस कोठरी में सो रही है। बाहर से शहबाज़ ने कोठरी के दरवाज़े पर ताला लगा दिया था। फिर भी ज़रीना को ज़िन्दा देखने की उसके अन्दर इतनी उत्सुकता हो रही थी कि वह फौरन ही चाबी लेकर कोठरी की ओर बढ़ा। ताला खोलकर अन्दर पहुंचा तो देखा कि वह चारपाई पर पड़ी सो रही है।

उसे जीती-जागती देखकर रहीम के मन से बोझ उतर गया। वह बहुत धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ उसकी चारपाई के निकट पहुंचा। उसने उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुए आहिस्ता से

कहा, "ज़रीना···जरीना बेटी !"

ज़रीना ने चौंककर आंखें खोलीं। उसके चेहरे पर आश्चर्य की कैफियत थी। लेकिन रहीम को पहचानकर शान्ति की लहर उसके चेहरे पर दौड़ गई। और फिर जल्दी से वह आंचल संभालती हुई उठ बैठी। तब रहीम ने कदम दरवाज़े की ओर बढ़ाते हुए कहा, "बेटी ज़रीना, आओ, नाश्ता कर लो। बावर्चीखाने में चली आओ। वहीं मुंह-हाथ धोकर कुल्ला कर लेना।"

ज़रीना मुंह से कुछ नहीं बोली। केवल टांगें चारपाई से नीचे लटकाकर पांव से अपनी ज़ूतियां टटोलने लगी।

रहीम सीधा रसोईघर में पहुंचा। वह सोच रहा था कि शहबाज़ ने न जाने बाहर से इतना मोटा ताला क्यों लगा दिया था। शायद इसलिए कि रात को कोई ज़रीना की कोठरी में न घुस पड़े या शायद वह डरता था कि ज़रीना कहीं चुपके से उठकर रात के अंधेरे में गायब न हो जाए।

५

अगरचे उसके मन में जो सन्देह उठा था वह गलत निकला, लेकिन इस सन्देह की कल्पना ही से रहीम सिर से पांव तक झुनझुना उठा था।

कुछ ही क्षण बाद शहबाज़ नाश्ते के लिए बावर्चीखाने में दाखिल हुआ। ज़रीना सिमटी-सिमटी उसके पीछे-पीछे चली आ रही थी। उन्हें देखकर रहीम ने अपने चेहरे पर से गम्भीरता के चिह्न हटा दिए और खिलखिलाकर हंसते हुए बोला, "आओ शहबाज़ खान ! मैं खुद नाश्ता करने जा रहा हूं, तुम लोग भी मेरे साथ ही बैठ जाओ।"

शहबाज़ मुंह से कुछ नहीं बोला। वह लोहे की कुर्सी को अपनी

एक उंगली से घसीटकर उसपर बैठ गया और फिर उसने हाथ बढ़ाकर दूसरी कुर्सी ज़रीना के लिए सीधी कर दी। ज़रीना भी गठरी बनी उसपर बैठ गई। कमरे में धुआं भर गया था, जिससे उन दोनों की मोटी-मोटी आंखों में बार-बार पानी भर रहा था। यह देखकर रहीम खांसता हुआ बड़ी खिड़की की ओर बढ़ा, जिसे सर्दी के डर से अक्सर बन्द रखता था। अभी ज़्यादा सर्दी पड़नी शुरू नहीं हुई थी, फिर भी रहीम को सुबह के समय या दिन ढलने के बाद पहाड़ों में चलने वाली ठंडी हवाओं के झोंकों से डर लगता था। अब कहीं इस उम्र में पहुंचकर उसे चैन का जीवन मिला था और वह अपने इस जीवन को भली भांति व्यतीत करने के लिए अपने स्वास्थ्य का बहुत ज़्यादा ख्याल रखता था।

बड़ी खिड़की की ऊपर-नीचे की सिटकनियां हटाते हुए उसने वहीं से आवज़ दी, "ऐ हातो, जल्दी से नाश्ता लगाओ हमारा, अगर हमारे नाश्ते में ही दोपहर कर दी तो बाकी मुसाफिरों का क्या बनेगा ?"

जब रहीम हातो कहके बुलाता तो इसका मतलब किसी विशेष नौकर से नहीं होता था बल्कि जो उसके सामने पड़ जाता वह समझ लेता कि उसको यह काम करना है।

"बहुत खूब !" यह उत्तर उस हातो ने दिया जो एक तरह से रहीम का मेट यानी सहायक था। इस हातो को, जिसका नाम मुहम्मद यूसुफ था, 'बहुत खूब' कहने का बड़ा शौक था। यूं लगता था जैसे 'बहुत खब' उसका तकिया कलाम हो।

रहीम ने खिड़की के पट ज़ोर से खोले तो सुबह की हल्की-हल्की ठंडी और ताज़ी हवा बावर्चीखाने में घुस पड़ी। रहीम ने अपने दोनों हाथों की उंगलियां एक-दूसरे में फंसाकर ज़रा जोश से कहा, "आहा, क्या ही सुन्दर दृश्य है ! ऐसी ताज़ी हवा तो मेरी सेहत के लिए भी बहुत अच्छी है। क्योंकि इस वक्त सूर्य भी निकल आया है और हवा में हड्डियों को जमा देने वाली वह ठंडक भी नहीं है जो रात के वक्त या सूरज निकलने से पहले होती है।"

रहीम ये सब बातें मानो अपने-आप ही से कह रहा था क्योंकि

बावर्चीखाने में बैठे हुए किसी भी व्यक्ति को उसकी बातों से कोई भी दिलचस्पी नहीं थी। वह सबके सब जवान थे इसीलिए उन्हें बुढ़ापे में प्रवेश करते हुए मनुष्य के शरीर की कमज़ोरियों और उसके विचारों का कुछ भी अनुभव नहीं था। हां, शहबाज़ खान के खिले हुए चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्कान उत्पन्न हो रही थी। वह शायद इसलिए कि जब रहीम मुंह फैला-फैलाकर बातें करता था तो उसकी बकरानुमा दाढ़ी ऊपर-नीचे को हिलती हुई अजीब-सी लगती थी। होंठों के ऊपर रहीम की नाक लम्बी होने से ज़्यादा नीचे को झुकी हुई थी। शायद शहबाज़ को रहीम का यह हुलिया देखकर किसी और बूढ़े की याद आ रही थी। या शायद वह यह सोच रहा था कि जब रहीम के मुंह में दांत नहीं रहेंगे तो उसकी नाक और ज़्यादा झुक आएगी, फिर वह चाय का प्याला मुंह के पास ले जाएगा तो होंठों से पहले उसकी नाक गर्म-गर्म चाय में डुबकी लगा जाएगी।

भला कोई और कैसे जान सकता था कि उस समय रहीम के मन में कैसी खलबली मची हुई थी। यह ठीक है कि वास्तव में भय की कोई बात नहीं थी, लेकिन रहीम किसी किस्म के झंझट में पड़ना नहीं चाहता था। उसे यह भी पसन्द नहीं था कि पुलिस वहां आए, और होटल के मुसाफिर बिदक जाएं, यह सोचकर कि न जाने इस होटल में ऐसी क्या-क्या कार्यवाहियां होती रहती हैं जिनके कारण पुलिस को वहां आना पड़ता है। कुछ ही समय पहले उसके मन में यह भी सन्देह पैदा हो गया था कि शायद शहबाज़ ने ज़रीना का सफाया ही कर दिया हो। यही सब बातें थीं जिन्होंने उसके दिमाग को उथल-पुथल कर दिया था और वह इधर-उधर की बातें करके अपने मन की घबराहट से परे भाग जाना चाहता था। लेकिन अन्त में उसने महसूस कर लिया कि ऐसे काम नहीं चलेगा। उसे शहबाज़ से पूछताछ करनी ही पड़ेगी कि यह लड़की कौन है, उन दोनों का आपस में क्या सम्बन्ध है, वे यहां क्यों आए हैं, कहां से आए हैं, कहां को जाएंगे आदि।

रहीम दुनिया का ऊंच-नीच देखे हुए था। उसे मालूम था कि यह सब कुछ जानने से पहले उसे आपसी सम्बन्ध को ज़रा अच्छा बनाना पड़ेगा। आपस में कुछ बेतकल्लुफी भी बढ़ानी होगी, ऐसा व्यवहार रखना होगा कि शहबाज़ बिना झिझक के अपने मन की सारी बातें खोलकर उसे बता दे।

नाश्ता करते समय रहीम ने कई छोटे-छोटे किस्से छेड़ दिए। इधर-उधर की गप्प हांकी, कुछ लतीफे सुनाए। अपनी यूरोप की यात्रा की कुछ घटनाएं सुनाकर उसने अपने इन ज़बरदस्ती के बिन बुलाए मेहमानों पर हल्का-सा रोब जमाने की कोशिश भी की। शहबाज़ खां ने उसकी बातों को दिलचस्पी से सुना। लेकिन फिर भी रहीम को लग रहा था कि शहबाज़ का ध्यान किसी और तरफ बंटा हुआ है। बातें करते-करते जब कभी रहीम की आंखें शहबाज़ की आंखों से टकराईं तो उसका दिल धक्-से होकर रह गया। क्योंकि शहबाज़ की आंखों में शोले-से लपकते दिखाई देते थे। यूं लगता था कि जैसे उस पठान युवक की नज़रें रहीम के आर-पार हो रही हों। ऐसे मौके पर रहीम की ज़बान पलभर को लड़खड़ा जाती और कुछ देर रुककर वह फिर अपनी बात के सिलसिले को जोड़ देता।

यह सब कुछ होते हुए भी रहीम ने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह अभी शहबाज़ से सब ज़रूरी बातें पूछ लेगा क्योंकि बिना कुछ जाने-बूझे उन्हें अपने पास रखने में रहीम को भय लगने लगा था। चुनांचे जब नाश्ता समाप्त हुआ तो उसने बिना शहबाज़ से आंखें मिलाए धीमे स्वर में कहा, "शहबाज़ खां! मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं, कहो तो ज़रा बाहर घूम आएं। कुछ ही दूर एक आबशार है जो इसी पहाड़ी से नीचे की ओर घाटी में बहने वाली नदी में जा गिरता है। यह बड़ा ही सुन्दर दृश्य है।"

शहबाज़ ने उसकी बात का तो कुछ उत्तर नहीं दिया, अलबत्ता उसने लड़की की ओर देखते हुए पश्तो भाषा में कहा, "जाओ ज़रीना, कोठरी में जाकर बैठो, मैं अभी आता हूं।"

ज़रीना चुपचाप उठी और आंचल संभालती हुई अपनी सल-

वार के पांयचों को फड़फड़ाती बावर्चीखाने के दरवाज़े से बाहर निकल गई। शहबाज़ खां ऊंचे खम्भे की तरह खड़ा हो गया और भारी आवाज़ में बोला, "चलो बाबा !"

रहीम उसे लेकर चल तो दिया, लेकिन अन्दर ही अन्दर उसका मन फिर घबराने लगा। फ्रंटियर के इन पठानों के बारे में उसने कई किस्से सुन रखे थे। बन्नू जैसे शहर से ये पठान किसी न किसी व्यक्ति को उठाकर भाग निकलते और फिर बाद में उसके घर वालों को रुक्का देकर रुपये की मांग करते। इसके साथ यह धमकी भी होती थी कि अगर वह रुपया एक खास समय तक न पहुंचा तो उस भगाए हुए व्यक्ति की गर्दन उतार दी जाएगी। वे पठान ऐसा करने पर तुल जाते तो वे धर्म या जाति नहीं देखते थे, क्योंकि जो ऐसा करते थे वह तो इसे अपना कारोबार समझकर ही करते थे। भला कारोबार में इस किस्म की बातें कौन सोचता है !

यह सब डर होते हुए भी रहीम डरपोक दिखाई नहीं देना चाहता था, क्योंकि इस तरह शहबाज़ की हिम्मत और बढ़ सकती थी। रहीम तो उस पठान को यही जताना चाहता था कि जहां वह रहता था वहां पठान का ज़ोर नहीं बल्कि अंग्रेज़ का राज्य था, और अंग्रज़ के राज्य में सरहद का पठान भी किसीका कुछ बिगाड़ नहीं सकता था।

शहबाज़ अपने हाथ में लाठी तौले हुए लम्बे-लम्बे ढीले-ढाले कदमों से चल रहा था और कुछ कुबड़ा रहीम अपने दोनों हाथ पीठ पर बांधे छोटे-छोटे कदम ज़रा जल्दी से उठाता हुआ शहबाज़ का साथ दे रहा था।

शहबाज़ इस बात की इन्तज़ार में था कि रहीम जो कुछ उससे जानना चाहता है, जान ले। लेकिन रहीम अभी समां बांधने में ही लगा हुआ था, इसलिए इधर-उधर की हांके जा रहा था। यहां तक कि वे लोग झरने के निकट जा पहुंचे।

रहीम ने हाथ से नीचे घाटी की ओर इशारा करते हुए कहा, "वह देखो, चांदी की चादर की तरह नदी बहती दिखाई दे रही

है। इस आबशार का मनों पानी रास्ते की चट्टानों से टकराता हुआ उस नदी में जा गिरता है। नीचे से भी इसका नज़ारा बहुत अच्छा लगता है। अक्सर लोग घूमते-फिरते इस घाटी में आते हैं। ज़रा गौर से नज़र डालो तो नीचे चलते-फिरते आदमी तुम्हें चींटियों की तरह दिखाई देंगे।"

शहबाज़ अपने अधखुले मुंह से नीचे की ओर देखता रहा। सचमुच यह दृश्य ऐसा था कि एक बार देखकर जीवन-भर इसे भुलाया नहीं जा सकता।

कुछ देर दोनों चुप रहे, फिर रहीम ने हाथ से उस ओर इशारा करते हुए, जिस ओर से पानी आ रहा था, कहा, "इस जगह तो पानी में बहुत तेज़ी आ गई है लेकिन ज़रा और परे जाकर बहाव में यह तीव्रता नहीं है। कभी-कभी इन पहाड़ों की कश्मीरी औरत वहां नहाने, कपड़े धोने के लिए आ जाती हैं। वह स्थान घनी झाड़ियों से घिरा हुआ है। मर्द अक्सर वहां नहीं जाते, क्योंकि सभी जानते हैं कि वह जगह स्त्रियों ने केवल अपने लिए अपना ली है। सुबह-शाम तो वहां कोई औरत नहीं जाती, लेकिन घर के कामकाज से फ़ुर्सत पाकर साढ़े दस-ग्यारह बजे से लेकर दोपहर के तीन-चार बजे तक कोई न कोई औरत नहाती या कपड़े धोती होती है। ऐसे मौके पर अगर कोई भूला-भटका मर्द ऊपर जा भी निकले तो दूर ही से झाड़ियों पर फैले हुए ज़नाना कपड़ों को लहराते देखकर उल्टे पांव लौट आता है।

रहीम यह मामूली-सी बात शहबाज़ को शायद इसीलिए इतने विस्तार से बता रहा था, ताकि अगर उसका कुछ दिनों यहीं रहने का विचार हो तो वह इस इलाके की ज़रूरी बातों का ख्याल रखे। लेकिन शहबाज़ का उसकी बातों की ओर ज़्यादा ध्यान नहीं था। वह अपनी हसीन लेकिन दहकती हुई आंखों से उन झरनों के तेज़ी से गिरते हुए पानी को देख रहा था। कैसी चौड़ी धारा थी यह! कितनी तेज़, कितनी तूफ़ानी, कितनी तीव्र, कितनी वहशी!

रहीम ने शहबाज़ की नज़रों को झरने के पानी पर जमी हुई

देखकर हल्की-सी मुस्कान अपने होंठों पर लाते हुए पूछा. "कहो शहबाज़ ! इस तरह टकटकी बांधे इस आबशार की ओर क्यों देख रहे हो ?"

शहबाज़ की समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने मन की भावना को शब्दों में कैसे ढाल दे। उसने रुकते-रुकते रहीम के झुर्रियोंदार चेहरे की ओर खोई-खोई नज़रों से ताकते हुए कहा, "बाबा ! जब एक मुर्दे के हृदय में किसी औरत की तलब पैदा होती है तो वह इसी आबशार की तरह होती है।"

शहबाज़ की इस साधारण-सी बात से उसके मन की भावना इतनी अच्छी तरह से ज़ाहिर नहीं हो रही थी, जितनी कि उसकी शक्ल से। रहीम को भी ज़िन्दगी का बहुत कुछ तजुर्बा था। वह बिल्कुल अनपढ़ भी न था। मनुष्य के हृदय और संसार की समस्याओं का उसे भली भांति अनुभव था। स्त्री और पुरुष का एक-दूसरे के प्रति प्रेम मनुष्य के जीवन की मौलिक चीज़ थी। परन्तु कभी-कभी यह सम्बन्ध इतना अनोखा, इतना तीव्र और इतना दहकता हुआ हो जाता था कि मनुष्य के जीवन में भूचाल आ जाता था और इस भूचाल का असर न केवल दो व्यक्तियों पर बल्कि इर्द-गिर्द के और लोगों पर भी होता था। वह यह भी जानता था कि सरहद के पठानों में स्त्रियों और पुरुषों का इश्क एक आम बात नहीं थी, क्योंकि उन लोगों को इसके कम ही अवसर मिलते थे; फिर भी वहां के लोगों में सामाजिक बन्धनों के होते हुए भी स्त्री-पुरुष का इश्क चल निकलता था। वहां भी दूसरे देशों की तरह मशहूर प्रेमियों और उनकी प्रेमिकाओं की घटनाएं घट चुकी थीं और अब भी उनके सम्बन्ध में रबाब के सुरों पर प्रेम के किस्से गाए जाते थे।

रहीम ने मन में कुछ खुश होकर सोचा कि अब तो शहबाज़ ने खुद ही प्रेम का किस्सा छेड़ दिया है। इसलिए अब उसके जीवन के निजी मामले की पूछताछ करने में ज़्यादा कठिनाई नहीं होगी। चुनांचे उसने ज़रा प्रेम-भरे अन्दाज़ में शहबाज़ का गोरा, भरपूर और भारी हाथ अपनी सूखी उंगलियों से छूते हुए कहा, "आओ ! अब तुम्हें

ऊपर तक घुमा लाऊं। इस समय काफी सवेरा है, कोई और वहां नहीं पहुंची होगी।"

शहबाज़ बिना कुछ कहे उसके साथ-साथ चल दिया। रहीम ने मौका ताड़कर धीरे से उसका हाथ दबाते हुए कहा, "मालूम होता है खान, तुम भी दिल पर गहरी चोट खाए हुए हो।"

कहने को तो रहीम ने बड़े साहस से काम लेते हुए बात कह दी परन्तु फिर वह खुद ही बिदक गया। यहां तक कि शहबाज़ से आंखें मिलाने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। अभी उसके दिमाग में धुआं-सा छाया हुआ था कि एकदम ही उसके कान में आवाज़ आई, "हां बाबा! तुम ठीक कहते हो।"

शहबाज़ की बात समाप्त होते ही रहीम ने एक पल उसके चेहरे पर ऐसी नज़र डाली जैसे शहबाज़ ने इतनी अनोखी बात कह दी हो, जिसकी रहीम को उससे बिल्कुल आशा ही न रही हो। रहीम को अपनी हालत पर खुद ही आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि कितनी अजीब बात है कि जिस बात का उसे पूरा विश्वास था वह ठीक सिद्ध हो जाने पर खुद आप ही चौंक उठा।

वे दोनों पानी के किनारे-किनारे ऊपर की ओर बढ़ते जा रहे थे। अब फिर खामोशी छाई हुई थी। कुछ देर बाद रहीम ने हरी-हरी घास की तरफ देखते हुए पूछा, "क्या यही लड़की है ज़रीना?"

शहबाज़ ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। शायद उसके विचार में यह बात इतनी स्पष्ट थी कि उसने हामी भरने की कोई ज़रूरत ही महसूस नहीं की।

वे दोनों चुपचाप चलते रहे। यहां तक कि वे उस स्थान तक आ पहुंचे जहां कश्मीरी औरतें आया करती थीं। इस समय वाकई वहां कोई नहीं था। शहबाज़ लम्बी गर्दन और ऊंचे कलगीदार असील मुर्ग की तरह टांगें फैलाकर एक चट्टान पर बैठ गया। रहीम भी निकट वाली चट्टान से टेक लगाकर खड़ा हो गया। उसने जेब से बीड़ी का बंडल निकाला और उसे दांतों में दबाकर माचिस दिखा दी। वह चुपचाप धुआं उड़ाने लगा। वह जानता था कि अब शहबाज़

से कुछ और ज़्यादा पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि शहबाज़ के मन में हलचल-सी पैदा हो चुकी थी और अब वह बिना कहे ही सारा किस्सा सुना डालेगा।

वही बात हुई। दो घड़ी बाद शहबाज़ ने अपनी प्रेम-कथा सुनानी शुरू कर दी। उस कहानी में कोई नयी बात नहीं थी। वही पुराना किस्सा था जो इस धरती के मनुष्य हज़ारों शताब्दियों से दोहराते आ रहे हैं। शहबाज़ एक छोटे कबीले के अमीर का बेटा था और ज़रीना एक मामूली पठान की लड़की थी। अमीर को गरीब घर की बहू लाने पर एतराज़ था और ज़रीना का घमंडी बाप भी कुछ कम न था। वह अमीर के सामने बड़ा बोल तो नहीं बोल सकता था, परन्तु अपने रिश्तेदारों में उसका कहना था कि वह कबीले का सरदार होगा तो अपने घर में। मैं उसके कबीले का आदमी नहीं जो उसकी धौंस में आ जाऊं। और अगरचे उसकी बेटी गरीब मां-बाप की बेटी थी, फिर भी देखने में वह किसी शहज़ादी से कम न थी।

गोया यह था उन दोनों का किस्सा। अपने खानदानों में इतनी सख्त दुश्मनी देख लेने के बाद उन दोनों को घर से भाग जाने के सिवा कोई चारा नहीं था। रहीम को शहबाज़ और ज़रीना पर दया आई। शहबाज़ अब कुछ समय तक दुनिया की गहमागहमी से हटकर इसी स्थान पर अपने जीवन के कुछ दिन व्यतीत करना चाहता था। रहीम ने सारी बात सुन लेने के बाद राय दी, "शहबाज़ खां! ···तुम कबीले के सरदार के लड़के हो। भला मेरे जैसा मामूली आदमी तुम्हें नौकर बनाकर क्योंकर रख सकता है! फिर तुम भी मुफ्त में मेरी रोटियां तोड़ना पसन्द नहीं करते। इसका तो बस एक ही इलाज है कि तुम दोनों मेरे पास मेहमान बनकर रहो, लेकिन इसके साथ ही अगर तुम और ज़रीना मेरे छोटे-मोटे कामों में हाथ बंटाना चाहोगे तो उसपर मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। जो मैं खाता हूं सो तुम खाओ, और जब कभी तुम्हें खर्च करने के लिए थोड़े-बहुत रुपयों की ज़रूरत पड़े तो बिना तकल्लुफ मांग सकते हो।"

बात यहीं पर समाप्त हो गई। रहीम के मन में कुछ सन्देह थे जिनका ज़िक्र करना अभी उसने उचित नहीं समझा। उसने सोचा कि वे दोनों चोर या डाकू तो हैं नहीं, इसलिए इस समय ज़्यादा कुरेद करके उनकी परेशानी बढ़ाना उचित न होगा।

इस बात पर सहमत होकर वे दोनों वापस लौट आए।

६

इस समय होटल में बस दो ही मुसाफिर थे। उनमें से एक तो कुछ बीमार था इसलिए उसका खाना भी परहेज़ी होता था, और यह खाना भी उसकी ही पत्नी तैयार करती थी। दूसरा मुसाफ़िर कंजूस था, यानी वह उन लोगों में से था जो थूक के पकौड़े बनाते हैं। वह अक्सर इस किस्म की बातें कहता, "अरे रहीम, हमारे एक मित्र ने हमें यहां भेजा था। उसने बताया कि यहां केवल प्राकृतिक सौन्दर्य ही नहीं है बल्कि रहीम मियां का खाना भी बड़ा स्वादिष्ट होता है। कबाब ऐसे कि घुलकर गले से उतर जाएं।"

इसपर रहीम खुश होकर कहता, "अजी हाथ कंगन को आरसी क्या, कहिए तो अपने हाथ से कबाब बनाकर हाज़िर करूं?"

इसपर ज़वाब मिलता, "नहीं रहीम मियां! मेरे पेट में कुछ गड़बड़ है।"

रहीम मियां को उससे सदा ही इस किस्म के उत्तर सुनने पड़ते थे। कभी उसका पेट खराब होता, कभी पेचिस लग जाती, कभी कबाब को देखकर उसे जीता-जागता बकरा याद आ जाता। रहीम मियां को इन बातों की ज़्यादा फिक्र नहीं होती थी, क्योंकि साल के इस भाग में मुसाफिर आते ही कम थे। वह अपनी कमी को दूसरे महीनों में पूरा कर लेता था।

मुसाफिर कम होने का नतीजा यह था कि सब नौकरों और

रहीम मियां को फुरसत रहती थी। शाम के समय बावर्चीखाने में अच्छी-खासी महफिल जमती थी। शहबाज़ से रहीम की काफी बेतकल्लुफी भी हो गई थी। वह खुद तो शराब नहीं पीता था, लेकिन अपने सामने रहीम को शराब पीते देखकर उसे गुस्सा भी नहीं आता था। रहीम ने बड़ी नम्रता से उसे समझाया, "बेटा, इधर हमारे इलाके में इस्लाम का वह ज़ोर नहीं है जो तुम लोगों के इलाके में है। तुम्हारे मुल्क में तो सच्चे इस्लाम का जलवा नज़र आता है। और भाई, तुम तो जानते ही हो कि मैं यूरोप भी हो आया हूं। अब तो शराब का नशा मेरी हड्डियों में रम गया है। इधर बुढ़ापा भी आन पहुंचा है। ज़िन्दगी-भर की बनी हुई बुरी आदतें इस उम्र में छोड़नी बड़ी मुश्किल हो जाती हैं। फिर भी सोचता हूं कि अगर अल्लाह ने चाहा तो मैं कुछ रुपया जमा कर लेने के बाद हज्ज करने जाऊंगा। बेटा, बड़ा गुनहगार हूं मैं। बस अल्लाह की रहमत के सहारे जी रहा हूं।"

यह कहते-कहते रहीम की आवाज़ भर्रा जाती और वह आंसू-भरी नज़रों से, टटोलकर कोने से शराब की बोतल निकालता और बोतल के साथ गिलास मेज़ पर रखकर एक तरफ तो उसकी आंखें डबडबा आतीं और दूसरी ओर उसका हृदय चहक उठता।

ज़रीना भी इन महफिलों में भाग लेती थी, लेकिन उसका अन्दाज़ नहीं बदला था। वह खुश थी लेकिन वह चहकती-बोलती नहीं थी। सदा की तरह वह अपने बांके प्रेमी की ओट में बैठ जाती। लेकिन ज़रीना के न बोलने से भी क्या फर्क पड़ता था। उसका तो अंग-अंग गाता था। उसकी मौजूदगी से धुंधलाया हुआ रसोईघर जगमगा उठता था। तीन-चार हाती कोने में बैठे अपने मैले हाथों में सुलगती हुई चिलमें दबाए धुआं उठाया करते। रानें उनके सपाट पेट और सीने से सटी रहतीं। पीठ को सहारा दीवार से मिलता था। उन लोगों को ज़रीना अपने-आपसे मीलों दूर बैठी दिखाई देती थी, लेकिन फिर भी अनजानी, अनबूझी और मासूम-सी मुस्कराहट हातों के होंठों पर खेलती रहती।

बावर्चीखाने के दूसरे कोने पर खिड़की के पास रहीम मियां अपने खाने-पीने का सामान लिए बैठा होता था। वह एक-एक पैग शराब गिलास में डालता और उसमें सोडा मिलाकर घूंट दर घूंट चुस्कियां लिया करता। इस्लामी शरीअत के अनुसार, उसकी नाक के नथनों तले मूंछें कटी हुई थीं। अलबत्ता मुंह के दोनों सिरों से गिनती के चन्द बाल सूखी घास की तरह नीचे को लटके दिखाई देते थे। वह खुद बूढ़ा ही सही, लेकिन उसका दिल जवान था और फिर दो सचमुच के जवान व्यक्तियों को अपने सामने देखकर उसे अपना बुढ़ापा भूल जाता, और फिर शहबाज़ खां पश्तो भाषा में टप्पे और बैतें सुनाता और फिर उसे समझाने के लिए वह हिन्दुस्तानी में उन गीतों का अनुवाद भी कर देता। शहबाज़ को अपनी उम्र के लिहाज़ से इश्क और मुहब्बत के विषय ही पसन्द थे और अक्सर वह सरहद के प्रेमी और प्रेमिकाओं के किस्से सुनाया करता था। रहीम मियां को पहले इस बात का पता नहीं था कि सरहद में भी लैला-मजनू, शीरीं-फरहाद, हीर-रांझा, ससी-पुन्नू और सोनी-महिवाल जैसे भी प्रेमी हो चुके हैं। यह तो उसे अब पता चला कि सरहद में भी आदम और पुरखान, मूसा खान और गुलमकई, फतेहखान और राबिया, जल्लात और महबूबा, मोमिन खान और शीरीनों आदि के प्रेम के किस्से इसी तरह मशहूर थे जैसे पंजाब में हीर-रांझा और सोनी-महिवाल के।

शहबाज़ खान लम्बी बेंच पर, जो बावर्चीखाने के बीचोबीच रखी हुई थी, बैठता था। उन दोनों का जोड़ा मानसरोवर झील के सच्चे मोती चुगने वाले हंसों का जोड़ा दिखाई देता था। शहबाज़ की गोद में उसकी प्यारी रबाब रखी होती थी। रबाब के ऊपर वाले सिरे को वह अपनी कोहनी का सहारा देता और दाहिने हाथ में हड्डी की बनी हुई मिज़राब पकड़े रहता, जिससे जब वह रबाब के तारों को छेड़ता तो उनमें से रोते हुए तराने तड़पते हुए निकलते और वातावरण में घायल पक्षियों की तरह फड़फड़ाने लगते। मूसा खान और गुलमकई का किस्सा तो बड़ा ही दर्दनाक था। मूसा

खान गुलमकई के चचा का लड़का था। उन दोनों का आपस में बहुत प्यार था, लेकिन सुहेली नाम का एक और बदमाश उनके रास्ते की दीवार बन जाता है। एक बार जब मूसा खान कुछ समय के लिए हिन्दुस्तान जाता है तो सुहेली मैदान खाली पाकर गुलमकई को ज़बरदस्ती उठाकर अपने घर में बन्द कर देता है। हिन्दुस्तान से वापस आने पर जब मूसा खान को इस बात का पता चलता है तो वह अकेला ही सुहेली के गांव पर हमला बोल देता है, लेकिन बेचारा अकेला होने के कारण मारा जाता है। गुलमकई को जब इस बात का पता चलता है तो वह सुहेली से कहती है कि मैं तुमसे शादी कर लूंगी लेकिन मुझे आखिरी बार मूसा खान की कब्र के दर्शन की इजाज़त दे दी जाए। वह इजाज़त दे देता है। गुलमकई कब्र पर जाकर इतने गहरे दुःख में डूबती है कि वह वहीं बेहोश होकर गिर पडती है और इसी बेहोशी में मर जाती है।

रहीम जब यह किस्सा सुनता तो उसकी आंखों में आंसू आ जाते। गाते-गाते शहबाज़ की आवाज़ भी भर्रा जाती और ज़रीना सहमी हुई कबूतरी की तरह ज़रा आगे की ओर खिसकती और प्रेमी की चौड़ी पीठ से सटकर उसपर झुक जाती। उसका नन्हा-सा दिल फड़फड़ाने लगता और उसकी बड़ी-बड़ी कल्पित आंखों में मुहब्बत और डर के मिले-जुले सपने तैरने लगते।

ये किस्से ऐसे नहीं थे जिन्हें एक बार सुनकर दोबारा सुनने को जी न चाहे। ये तो सदाबहार किस्से थे, सदाबहार ही इनका विषय था। कितनी अजीब बात है कि सफल प्यार और चैन से रहते हुए पति-पत्नी और उनके परिवार से इन्सान को कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह तो सदा से अधूरे सपनों के किस्से सुनना ही पसन्द करता है। टूटी हुई आशाओं के खंडहर उसे राजमहलों से ज़्यादा प्यारे हैं। ज़रीना को मोमिन खान और शीरीनों (जिसे शीरी भी कहते थे) का किस्सा ज़्यादा पसन्द था। कभी धीरे से वह अपनी मोरनी की सी गर्दन आगे बढ़ाती, उसके सुर्ख होंठ चुपके से शहबाज़ खान के कान में अमृत टपकाते और शहबाज़ मुस्कराकर

सिर हिलाते हुए हामी भरता। कभी किसीने ज़रीना को ज़ोर से बोलते नहीं सुना था। वह हमेशा, सरगोशी में ही बात करती थी, लेकिन जब कभी वह कुछ कहती तो सबको यह जानने की उत्सुकता होती थी कि ज़रीना के मधुभरे होंठों में से क्या शब्द निकले हैं। रहीम पूछता, "क्या कह रही है हेमारी ज़रीना बेटी ?"

इसपर शहबाज़ खान सिर पीछे को फेंककर एक खुली हंसी हंसता। इस हंसी को कहकहा नहीं कह सकते थे, लेकिन यह संक्षिप्त हंसी भी नहीं होती थी। इस विशाल हंसी में उसके अंग-अंग का आनन्द मिला होता था। वह रहीम मियां की ओर तिरछी नज़र डालते हुए अबरू से ज़रीना की ओर इशारा करते हुए कहता, "कहती है मुझे मोमिन खान और शीरीं का किस्सा ज़्यादा पसन्द है, वही सुनाओ।"

यह सुनकर रहीम मारे खुशी के एक ज़ोर का कहकहा लगाता, जिसपर ज़रीना छुईमुई की तरह सिमटकर बिल्कुल ही अपने प्रेमी की ओट में हो जाती। उसका सिमटना भी बहुत प्यारा होता था। उसके गालों की सुर्खी और आंखों की चमक न जाने कहां डूब जाती, लेकिन यह सब कुछ क्षण-भर के लिए होता, क्योंकि इधर जब शहबाज़ खान की मिज़राब एकदम कई तारों को छू जाती तो इन सब तारों के मिले-जुले स्वर नाचते-थिरकते और गुलाल उड़ाते ज़रीना के कानों में पहुंचते तो उसके गालों का रंग और आंखों की मद और भी ज़्यादा तीव्रता से लौट आती। और इसके साथ ही शहबाज़ खान किस्से को गा-गाकर सुनाने लगता। इस किस्से में भी शीरीं का भाई, जिसका नाम ज़बरदस्त था, बड़ा बदतमीज़ और नालायक था। शीरीं का बाप तो शीरीं और मोमिन खान को बचपन से ही एक-दूसरे का बना चुका था, लेकिन उसके मर जाने के बाद मोमिन खान ने जब ज़बरदस्त से शीरीं का हाथ मांगा तो उसने इंकार कर दिया। चूंकि शीरीं मोमिन खान के चचा की लड़की थी इसलिए वह नहीं चाहता था कि उनकी जाति आपस में ही कट मरे। इसलिए वह अपना देश छोड़कर हिन्दुस्तान चला गया। वह बारह

वर्षों तक वहीं रहा। जब लौटकर अपने घर पहुंचा तो रात का समय था। घर वालों ने उसे नहीं पहचाना और चोर के धोखे में, या इस बहाने में ज़बरदस्त ने मोमिन खान को कत्ल कर दिया। जब अपनी पाटदार लेकिन थरथराती आवाज़ में शहबाज़ उस टप्पे पर पहुंचता जहां मोमिन खान शीरीं से विदा होता है तो सुनने वालों के दिल पिघलकर बह जाते। शीरीं उससे पूछती है:

"तूने तो सफर के लिए जूते पहन लिए हैं। मगर यह फूलों की फुलवारी किसके हवाले करके जा रहे हो?"

इसपर मोमिन खान उत्तर देता है, "यकीनन मैं सफर पर जा रहा हूं···और फूलों की यह फुलवारी खुदा के हवाले करता हूं।"

शीरीं फिर कहती है, "जा तो रहे हो, लेकिन मेरे खान, यह बात अच्छी तरह समझ लो कि भारत की युवतियों के गालों पर ऐसे तिल नहीं हुआ करते (जैसेकि मेरे गाल पर हैं।)।"

इसपर मोमिन खान उत्तर देता है, "तुम ठीक ही कहती हो, यह भी ठीक है कि मैं भारत जा रहा हूं—लेकिन मैं भारत की महिलाओं को अपनी बहनें और माताएं मानता हूं।"

यह था मोमिन खान और शीरीं का रूमान, जिसे सुनकर ज़रीना की आंखों से आंसू टप-टप गिरने लगते थे।

वे हातो कुछ भी न समझ पाते थे, लेकिन सबको रोते देखकर उनकी आंखों में भी आंसू भर आते।

शहबाज़ खान कबीले के सरदार का लड़का था, इसलिए उसकी बुद्धि आम पठानों की तरह मोटी नहीं, बल्कि बहुत तीव्र थी। वह जल्दी ही हिन्दुस्तानी भाषा को और बेहतर ढंग से बोलने लगा। हालांकि उसकी जेब खाली थी, फिर भी उसे रुपये-पैसे का कुछ लालच नहीं था। वह बिल्कुल ही अलमस्त युवक था। रहीम बड़ी मुश्किल से उसे कुछ रुपये ले लेने पर राज़ी करता।···शहबाज़ वे रुपये भी केवल ज़रीना की खातिर स्वीकार कर लेता। उसे उसके लिए कई छोटी-मोटी चीज़ें लानी होती थीं।

रहीम ने उसे बैरे के काम पर नहीं लगाया क्योंकि वह जानता था कि वह इस किस्म के काम के योग्य नहीं है, और फिर वह ऊंचे खानदान का लड़का था, उससे मामूली नौकरों का काम लेना रहीम ने उचित नहीं समझा।

रहीम के स्नेह के कारण शहबाज़ उसका आभारी था, लेकिन दिल से रहीम के काम आना चाहता था। इसलिए और कुछ नहीं तो वह दूसरे-तीसरे दिन रहीम के साथ सब्ज़ीमण्डी जाता, क्योंकि रहीम होटल के लिए प्रायः सब्ज़ियां इकट्ठी ही खरीद लाता था। सब्ज़ी मण्डी में वह पूरे टोकरों की बोली बोलता। जब सारा सामान खरीद लेते तो उसे बस पर लादकर मीरपुर के कस्बे तक लाते। वहां से सारा सामान अपने दो गदहों पर लादकर ऊंची-नीची पहाड़ियों पर होते हुए पगडण्डी के रास्ते से होटल तक पहुंच जाते।

जब से शहबाज़ रहीम के साथ बाज़ार जाने लगा था तभी से सब लोगों पर उसका रोब छा गया था। एक छोटा-सा झगड़ा भी हो गया। दो सब्ज़ी बेचने वाले, जिनकी शहर में बड़ी-बड़ी दुकानें थीं, रहीम से भिड़ पड़े। सभी लोग जानते थे कि रहीम एक अंग्रेज़ का नौकर था, अब चाहे वह अपना कारोबार चलाने लगा था, फिर भी हर कोई उसे ललकारने लगता। वह बेचारा कमज़ोर भी था और हीन भावना का शिकार भी, इसलिए अक्सर वह दब ही जाता लेकिन शहबाज़ खां, जो उसका बड़ा सम्मान करता था, भला उसका अनादर अपनी आंखों से कैसे देख सकता था! चुनांचे जब वे दो सब्ज़ी बेचने वाले रहीम पर चढ़ दौड़े तो शहबाज़ खां ने अपने बड़े-बड़े दोनों हाथों में उनकी गर्दनें दबोचकर उन्हें हवा में उठा दिया और फिर उन्हें कूड़े के ढेर की तरफ फेंकता हुआ गुस्से से दांत पीसता हुआ बोला, "खो! यज़ीद का बच्चा, अगर आएन्दा ऐसी हरकत की तो तुम्हारी खोपड़ी अखरोट की तरह तोड़कर फेंक देगा।"

जो पठान काफी समय से वहां रह रहे थे और रुपया सूद पर चलाते थे वे इतने हथछुट नहीं थे। पर शहबाज़ खां नया-नया सरहद से आया था और फिर कबीले के सरदार का बेटा था, जिसके सामने

उसके इलाके के लोग भी सिर उठाने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। भला वह ऐसे मौकों पर कहां रुकने वाला था !

शहबाज़ खान ऊपर के काम कर लेता था तो ज़रीना भी बेकार नहीं बैठती थी। वह खाना पकाने में रहीम की सहायता करती। रहीम खुश होकर कहता, "जब से ज़रीना बेटी ने बावर्चीखाने में कदम रखा है तब से हमारा खाना और स्वादिष्ट बनने लगा है।"

यह सुनकर ज़रीना का चेहरा कानों तक गुलाबी रंग में डूब जाता और वह पलकें झुकाकर धरती की ओर देखने लगती।

ज़रीना को मुर्गियों से काफी दिलचस्पी हो गई थी। वह मुर्गियों की देखभाल को काम समझकर नहीं, बल्कि अपने शौक से करती थी। रहीम उसे इस काम में लगे देखता तो खुशी के मारे फूला न समाता; चहककर कहता, "मुर्गियों की देखभाल करने में मुझे तो बड़ी मुसीबत उठानी पड़ती थी, लेकिन अब तो ज़रीना बेटी ने यह सारा बोझ अपने सिर पर ले लिया है। और फिर वह इसे इतने हल्के-फुल्के अन्दाज़ से निपटा देती है मानो यह कोई काम ही न हो।"

ज़रीना इसीपर बस नहीं करती थी, बल्कि अक्सर दोपहर के समय शहबाज़ और रहीम मियां के कपडे लेकर बैठ जाती। अगर कहीं से कपड़ा फटा होता तो उसे सी देती, कहीं सुराख होता तो उसे रफू कर देती। जहां बटन न होता वहां बटन लगा देती। अब तो रहीम मियां को घरेलू जीवन का मज़ा आने लगा था और उसके मन में दिन ब दिन ज़रीना और शहबाज़ के प्रति प्रेम बढ़ता ही चला गया।

ज़रीना फुर्सत पाकर झरने वाली नदी में नहाने और कपड़े धोने के लिए भी चली जाती थी। वहां औरतों की ज़्यादा रेल-पेल नहीं होती थी। हां, दोपहर के समय वहां कोई न कोई औरत बैठी कपड़े धोया करती थी। उन लड़कियों में से कुछ से ज़रीना का भी परिचय हो गया। कभी-कभी आपस में थोड़ी बहुत बातचीत भी कर लेती थीं।

शहबाज़ का फुर्सत का समय या तो रबाब बजाने में गुज़रता, या रहीम मियां को अपने देश के बारे में किस्से सुनाने में। वह अक्सर

कहता, "बाबा ! तुम भी किस मुसीबत में फंसा है ? इस बुढ़ापे में तुमको आराम का ज़रूरत है। एक रोज़ अम तुमको अपने वतन ले चलेगा। ओए अम तुमको बड़ी आसाएश[1] से रखेगा।"

जब कभी शहबाज़ की मुहब्बत जोश में आती तो वह इसी किस्म की बातें करने लगता। वह कहता, "बाबा, हमारे सरहदी सूबे में बहुत अच्चा अच्चा मकाम[2] है, जहां पर अखरोट, खुबानी वगैरह फल पैदा होता है। अंगूर तो वहां ऐसा मिलता है कि अगर पाव-आध पाव रूमाल में बांधकर छोड़ दिया जाए तो थोड़ी देर में सारा अंगूर बताशे की तरह घुलमिल जाता है।"

रहीम ये बातें सुनता तो मुस्करा देता। वह उसका शुक्रिया अदा करते हुए जवाब देता, "बेटा शहबाज़, अब हम बूढ़ा हो गया है, अब तो यहीं हमारा कब्र बनेगा।"

शहबाज़ ज़ोर का कहकहा लगाता, "नहीं बाबा, अम तुम्हारा कब्र तो अपने सरहद में ही बनाएगा।"

रात का खाना खाने के बाद कभी-कभी शहबाज ज़रीना को लेकर पहाड़ियों पर घूमने चल देता। उस समय जुगनू टिमटिमाते हुए झाड़ियों में उड़ते फिरते, तारों की छांव तले इस मनमोहक वातावरण में शहबाज़ पर मस्ती छा जाती और वह खालिस पठानों के से अन्दाज़ में सिर पीछे को फेंककर अपनी भरपूर आवाज़ में नारा लगाता, "या कुबीन !"

या कुबीन का यह नारा पहाड़ियों से टकराता हुआ हर ओर गूंजने लगता। सुनने वाले समझ जाते कि अब शहबाज़ खान रबाब बजा-बजाकर गीत गाने को है। ऐसे मौकों पर वह अक्सर टप्पे गाया करता। ये टप्पे पठानों में ही गाए जाते हैं। शायद यह वहीं से पंजाब में भी पहुंचे। दो घड़ी उसकी अंगुलियां रबाब के तारों पर नाचतीं और फिर उसकी गूंजती हुई आवाज़ में तड़पता हुआ टप्पा सुनाई देता :

---

१. आराम २. स्थान

राशा ऊ कोरह दिलबरा दावर दमे कि न दमे
पै लम्बूम-ए यजूद सोमैं लुक्का ए सुकवर दमे कि न दमे[1]

शहबाज़ खान के इन टप्पों में भैरवी रागिनी के स्वर लगते थे। उनमें छिपे हुए दर्द, उष्णता, उदासी और तीव्रता से सारा वातावरण मचल उठता। आर ज़रीना अपनी अधखुली आंखों से फीकी-फीकी पहाड़ियों को देखती हुई अपने प्रेमी के इन गीतों का आनन्द लेती रहती। कभी-कभी आधी-आधी रात तक यही सिलसिला जारी रहता।

७

एक दोपहर को जबकि होटल के कमरे करीब-करीब खाली थे; शायद एकआध सड़ियल-सा मुसाफिर ऊपर की मंज़िल पर किसी कोने के कमरे में घुसा पड़ा था; उस समय रहीम भी सब कामों से फुरसत पाकर आराम करने की सोच रहा था, क्योंकि दो बज चुके थे। सभी कश्मीरी हातो भी दूर चिनार के पेड़ों तले चिलमें पी रहे थे।

रहीम ने आखिरी बार अंगोछे से गले का पसीना पोंछा, क्योंकि वह भट्ठियों में दहकते कोयलों पर राख डालता रहा था ताकि शाम तक ज़्यादा कोयले न जलें। इतने में ही एक लौंडा भागता हुआ बावर्चीखाने में आया। वह इस तरह घबराया हुआ था जैसे शेर उसका पीछा कर रहा हो।

रहीम ने उसकी ओर आश्चर्य-भरी नजरों से देखा। पहले तो पहचाना नहीं फिर उसे ख्याल आया कि यह लौंडा तो मीरपुर के छोटे से ढाबे में नौकरी करता था। इस ढाबे का मालिक अली-

---

१. आ देख कि तेरा इश्क आग बरसाने वाला है या नहीं
देख कि शोलों से मेरा शरीर एक दहकता हुआ अंगारा है कि नहीं

मोहम्मद उसका मित्र था।

लड़का खड़ा बुरी तरह हांफ रहा था। उसकी दोनों बांहें ढीले-ढाले अंदाज़ से लटकी हुई थीं। उसके फटे हुए कुर्ते में से उसकी ऊपर-नीचे को होती हुई पसलियां साफ दिखाई दे रही थीं।

उसकी यह दशा देखकर रहीम समझा कि ज़रूर अली पर कोई मुसीबत आई है, जो उसने लौंडे को ढाई-तीन मील तक दौड़ाया है। उसने लड़के के सिर पर हाथ रखते हुए पूछा, "कहो हमीद, क्या बात है ? तुम घबराए हुए क्यों हो ?"

हमीद की सांस इतनी फूली हुई थी कि कुछ देर तक तो वह बोल नहीं सका। तब रहीम ने कुल्हड़ में पानी भरकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "अबे ले, दो घूंट पानी पी ले, ज़्यादा मत पीना। अभी तेरी सांस फूली हुई है।"

हमीद कुल्हड़ दोनों हाथों में लेकर तीन-चार घूंट पानी गटागट पी गया तो रहीम ने कुल्हड़ पर हाथ रखकर उसे रोका। लड़के की बांहों से पानी बहकर उसकी ठुड्डी से टपक रहा था। उसने टूटे-फूटे शब्दों में कहना शुरू किया, "मुझे अली ने भेजा है।"

"अरे वह तो मैं पहले ही समझ गया था। यह तो बता कि उसने तुझे भेजा क्यों ? उसपर कोई आफत तो नहीं आ पड़ी ?"

"नहीं बाबा, वह तो ठीक-ठाक है, लेकिन उसने मुझे तुमसे यह कहने को भेजा है कि शहबाज़ और उस लड़की को होटल से हटा दो; क्योंकि पुलिस का एक अफसर पूछताछ करने के लिए आ पहुंचा है।"

यह सुनकर रहीम के कान खड़े हो गए। उसने सोचा कि वही बात हुई जिसका उसे डर था। तब उसने लड़के के कंधे को हिलाते हुए कहा, "अबे अली को कैसे पता चला कि पुलिस का कोई अफसर पूछताछ करने के लिए आया है ?"

"अरे वह तो मेरे सामने ही आया। रहीम मियां, वह तो खूब लम्बा ऊंचा सरदार है। उसके सिर पर खाकी रंग की पगड़ी बंधी है, जिसका शमला यूं ऊपर को उठा हुआ है।"

यह कहते-कहते लड़के ने शमले का दृश्य खींचने के लिए अपने हाथ का फैला हुआ पंजा हवा में लहराया और फिर अपनी बात जारी रखी, "उसकी वर्दी के बटन, और उसके भारी-भारी बूट खूब चमक रहे थे और उसके हाथ में एक मोटा-सा डंडा भी था।"

रहीम ने चिढ़कर कहा, "अरे यह सब कुछ तो हुआ, मुझे यह बता कि अब वह पुलिस वाला है कहां ?"

"वह तो हमारी दुकान पर ही बैठा था। उसने अली से शहबाज़ के बारे में प्रश्न किए। उसे शहर ही से पता चल गया था कि यहां रहीम मियां के पास कोई शहबाज़ खान नाम का पठान आया है। अली ने अफसर को बातों में लगाकर बिठा लिया और फिर चुपके से मुझे अन्दर वाली कोठरी में ले जाकर समझाया कि मैं एकदम भागता हुआ जाऊं और तुम्हें इस बात की खबर कर दूं।"

"इसका मतलब यह है कि पुलिस वाला किसी रास्ता बताने-वाले को साथ लेकर यहां आएगा। अच्छा, मैं इसका कुछ इन्तज़ाम करता हूं। तुम यहां से फौरन वापस चल दो, लेकिन याद रखो कि रास्ते में जहां कहीं पुलिस का अफसर आता दिखाई दे तो फौरन किसी झाड़ी में छिप जाना, ताकि वह तुझे देख न पाए वरना उसे शक हो जाएगा कि तूने मुझे इस बात की खबर पहुंचा दी है। अच्छा, ले भाग अब।"

यह कहते हुए रहीम ने उसकी पीठ पर थपकी दी और वह छोकरा बन्दर की सी फुर्ती से वहां से भाग निकला।

अब रहीम ने फौरन जाकर शहबाज़ को जगाया, जो स्टोर-रूम में चारपाई डाले सो रहा था। उसे जल्दी से सारी बात बताई और पूछा, "ज़रीना कहां है ?"

ज़रीना सदा से अपनी अलग कोठरी में सोती थी, उस समय भी वह वहीं सो रही थी।

जब शहबाज़ ने ज़रीना को जगा दिया, तब रहीम ने हाथ से इशारा करते हुए कहा, "अब तुम दोनों मेरे पीछे-पीछे चले आओ।"

रहीम की पतली-पतली टांगें बड़ी फुर्ती से पहाड़ियों की ऊंची-

नीची पगडंडी पर चल रही थीं। रास्ते में उनकी बहुत ही कम बातचीत हुई। शहबाज़ एक हाथ में रबाब थामे हुए था और दूसरे हाथ से उसने ज़रीना को सहारा देने के लिए उसका हाथ थाम रखा था। ज़रीना ने अपनी बगल में अपने कपड़ों की छोटी-सी गठरी थाम रखी थी।

चलते-चलते जब वे तकरीबन एक मील दूर निकल आए तो रहीम एकदम रुक गया। उसने हाथ से सामने की ओर इशारा करते हुए कहा, "वह देखो शहबाज़, यहां पहले किसी ठेकेदार ने चूने का भट्ठा बनाया था और इसके करीब ही मज़दूरों के लिए कुछ खपरैल वाली कोठरियां भी बनवाई थीं। अब भट्ठा तो दो साल से वीरान पड़ा है, लेकिन ये कोठरियां तुम दोनों के काम आ सकती हैं। अब तुम दोनों यहीं रहो। मेरे पास आने की कोशिश मत करना। मैं शाम तक तुम्हारा खाना लेकर आऊंगा और सारी बात बता दूंगा। इसके बाद जो ठीक समझेंगे, सो करेंगे।"

यह कहकर रहीम एकदम लौट पड़ा। उसने ज़्यादा देर रुकना उचित नहीं समझा, क्योंकि वह चाहता था कि उस अफसर के पहुंचने से पहले ही वह अपने होटल में उपस्थित रहे। वह तेज़ी से कदम बढ़ाता हुआ भागमभाग होटल में पहुंचा। उसने देखा कि अभी तक वहां कोई अफसर नहीं आया था। इससे उसे कुछ इत्मीनान हुआ और वह बावर्चीखाने के सामने धूप में चारपाई डालकर उसपर लेट गया।

अभी पांच मिनट भी न गुज़रे थे कि उसे भारी बूटों की खटाखट की आवाज़ सुनाई दी। उसने अपनी आंखों पर रखे हुए बाज़ू को हटाकर होटल की ओर आने वाले रास्ते पर नज़र डाली तो उसे वही तुर्रेदार पगड़ी बांधे हुए सरदार दिखाई दिया। उसके साथ मीरपुर का एक गरीब-सा कश्मीरी भी था।

पुलिस अफसर नपे-तुले कदमों से चलता हुआ रहीम के निकट पहुंचा तो रहीम फौरन चारपाई से उतरकर खड़ा हो गया और

मसला करते हुए उसने पूछा, "हुज़ूर को क्या कमरा चाहिए। आपका सामान कहां है ?"

सरदार ने हाथ में पकड़े हुए डंडे को बगल में दबाकर दोनों हाथ अपनी खाली नेकर की जेबों में डाल दिए और इधर-उधर नज़र दौड़ाते हुए प्रश्न किया, "तुम ही रहीम मियां हो ?"

"जी हां !"

अब सरदार ने रहीम की आंखों में आंखें डालकर मद्धिम लेकिन मज़बूत स्वर में कहा, "मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

अभी रहीम ने कुछ जवाब नहीं दिया था कि सरदार ने घूमकर उस कश्मीरी की ओर देखा और फिर जेब से चांदी की अठन्नी निकालकर उसके हाथ पर रखते हुए बोला, "अच्छा हातो, अब तुम जाओ। अब तुम्हारा कोई काम नहीं है।"

हातो सलाम करके चला गया। रहीम ने हाथ से एक कमरे की ओर इशारा करते हुए कहा, "आइए, आप कमरे में आराम से बैठिए। वहीं बातचीत हो जाएगी।"

सरदार ने बेपरवाही से उत्तर दिया, "नहीं, यहीं ठीक है।"

यह सुनकर रहीम जल्दी से एक कुर्सी उठाकर ले आया और उसे साये में रखते हुए बोला, "आप तशरीफ रखिए, मैं आपकी हर बात का जवाब देने को तैयार हूं।"

उस सरदार में आम पुलिस वालों की सी बेजा रोब ज़माने की आदत नहीं थी। वह काफी ठहरी हुई तबीयत का आदमी था। उसके व्यवहार और बोलचाल के ढंग में खामखा दूसरे को दबाने की कोई भावना दिखाई नहीं देती थी। फिर भी वह होशियार अफसर था। बिना किसी कोशिश के देखनेवाले पर उसका रोब पड़ता था।

कुर्सी पर बैठते ही उसने रहीम से पहले तो इधर-उधर की बातें पूछीं और फिर शहबाज़ के बारे में पूछा तो रहीम ने उत्तर दिया, "जी हां, हुज़ूर, शहबाज़ खां नामक एक पठान युवक यहां आया था। उसके साथ एक लड़की भी थी। उसने कुछ अर्से तक यहां नौकरी भी की और फिर चला गया।"

"यहां से कब गया ?"

"हुज़ूर, आज ही गया।"

"तुम सच कहते हो ?"

"जी हुज़ूर, बिल्कुल सच ! जनाब आली, भला मुझे झूठ बोलने की क्या ज़रूरत ! उनसे मेरी कोई रिश्तेदारी तो नहीं।"

इस तरह रहीम ने कई बातें बताईं। सरदार ने कुर्सी से उठकर सारे होटल का चक्कर लगाया। उसे शहबाज़ खां कहीं दिखाई नहीं दिया। तब रहीम ने हाथ जोड़कर कहा, "हुज़ूर ! चाय का वक्त हो गया है। कहिए तो मैं चाय हाज़िर करूं ?"

इसपर पुलिस अफसर ने घूमकर रहीम की ओर देखा, लेकिन उसकी बात का कुछ उत्तर नहीं दिया और फिर कुछ कदम चलकर बिल्कुल उसके पास खड़ा हुआ और उसने अपने छोटे-से अफसराना डंडे की नोक रहीम के कमज़ोर कन्धे पर जमाकर उसे बड़ी तेज़ नज़रों से घूरकर देखा इस। समय सरदार रहीम मियां के इतने करीब खड़ा था कि वह उसके चौड़े-चकले सीने पर चमकते हुए बटनों को अच्छी तरह देख सकता था। उसके मज़बूत हाथ की चौड़ी कलाई पर पसीने में भीगे हुए छोटे-छोटे बाल साफ दिखाई दे रहे थे। रहीम मियां को कसी हुई घनी दाढ़ी में अफसर का चेहरा इस तरह भयंकर दिखाई दिया कि उसने महसूस किया कि अब उसे एक भी घुड़की मिली तो वह सारी बात सचमुच उगल देगा। लेकिन सरदार की आवाज़ में भारीपन के अलावा एक प्रकार की नर्मी भी छिपी हुई थी, "देखो रहीम ! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि एक जवान एक लड़की को भगाकर ले आया है। लड़की का बाप शहबाज़ के बाप की तरह अमीर तो नहीं है लेकिन फिर भी उसकी बड़े अफसरों तक पहुंच ज़रूर है। इसीलिए मुझे यहां तफतीश करने आना पड़ा। अगर तुम समझते हो कि शहबाज़ उस लड़की के साथ ज़्यादा समय तक छिपा रह सकेगा तो तुम्हारा यह ख्याल गलत है। ऐसे मुजरिम लम्बे अर्से तक पुलिस की नज़रों से बच नहीं सकते। अगर बाद में पता चला कि इन्हें छिपाने में तुम्हारा भी

हाथ था तो इस बुढ़ापे में तुम भी बंधे-बंधे फिरोगे।"

इतना कहकर सरदार ने डंडा रहीम के कंधे से हटा लिया और चार-पांच कदम पीछे हट गया।

उस समय रहीम मियां की हालत बिल्कुल भीगी बिल्ली की सी हो रही थी। वह यूं टांगें सिकोड़े खड़ा था जैसे उसके पाजामे में पेशाब निकल गया हो। एक तो वैसे ही उसकी शक्ल बड़ी मस्कीन थी और फिर इस समय तो वाकई उसे नानी याद आ रही थी। अब वह इस भेद को पल-भर के लिए भी छिपाने योग्य नहीं था। लेकिन वह इतना डर गया था कि उसके मुंह से आवाज़ भी नहीं निकल रही थी। वह सिर से पांव तक बिल्कुल सुन्न हो गया था।

उसकी यह दशा देखकर न जाने क्यों सरदार की मूछों तले एक हल्की-सी मुस्कराहट उसके होंठों पर उत्पन्न हुई, जिसे रहीम नहीं देख पाया। सरदार ने अपना डंडा बायें हाथ की हथेली पर धीरे-धीरे मारते हुए कहा, "तुम बुड्ढे हो गए हो, तुम शहबाज़ को कोई अक्ल की बात क्यों नहीं बताते। देखो, लड़का भी बालिग है और लड़की भी बालिग है। इसीलिए वे दोनों सीधे-सीधे शादी क्यों नहीं कर लेते? अगर वे चाहें तो कचहरी में जाकर इस मतलब का बयान दे सकते हैं। किसी बालिग लड़की और बालिग मर्द का शादी कर लेना कोई जुर्म नहीं है। उन्हें चोरों की तरह छिपने की ज़रूरत क्या है? वे डंके की चोट पर शादी कर लें और पूरी आज़ादी से अपना घर बसाकर रहने लगें तो उन्हें कोई कुछ नहीं कह सकता।"

रहीम को सरदार की बातों में सहानुभूति-सी महसूस हुई। दरअसल वह शहबाज़ और ज़रीना को अपने बच्चों की तरह चाहने लगा था। वह उन्हें इस मुसीबत से निकालना चाहता था, उनकी सहायता करना चाहता था, लेकिन वह खुद भी कोई गैर-कानूनी हरकत नहीं करना चाहता था।

कुछ देर तक सरदार चुपचाप खड़ा पहले की तरह अपने बायें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ में पकड़े हुए डंडे को धीरे-धीरे मारता रहा। रहीम का जी चाहा कि वह दौड़कर उस मेहरबान के पांव पकड़

ले, लेकिन पेश्तर इसके कि वह कुछ कहता, सरदार ने अपनी भारी आवाज़ में कहा, "अच्छा, मैं चलता हूं।"

रहीम का हाथ फौरन उसके माथे पर पहुंचा और वह बोला, "सलाम हुज़ूर।"

सरदार ने अपने डंडे का सिरा अपने माथे तक ले जाकर रहीम के सलाम का जवाब दिया, फिर वह एकदम उधर को घूम गया जिधर से कि वह आया था। उसकी गुद्दी पर उसके सफेद होते हुए बाल हवा में फिर रहे थे।

जब उसके भारी बूटों की किचर-किचर की आवाज़ दूर पहुंचकर बिल्कुल डूब गई तो रहीम कुछ कदम आगे बढ़ा, पगडंडी पर चलते हुए सरदार को देखता रहा, यहां तक कि वह अगली पहाड़ी पर चढ़ने लगा।

पुलिस अफसर से मुलाकात कर रहीम के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह एक लम्बी ठंडी सांस लेकर चारपाई पर लेट गया। उसने जेब से बीड़ी निकाली, उसे माचिस दिखाई और उसका धुआं उड़ाते हुए काफी देर तक गहरी सोच में डूबा रहा।

इसी हालत में जाने उसने कितनी बीड़ियां फूंक डालीं। जब दिन ढलने लगा तो हातो भी आ पहुंचे। उन्हें काम पर लगाकर रहीम ने चाय पी और फिर थर्मस में चाय भरकर और नेपकिन में कुछ सिंके हुए टोस्ट और दो टिकिया मक्खन को लपेटकर वह चूने के भट्ठे की ओर चल दिया।

जब वह वहां पहुंचा तो देखा कि ज़रीना और शहबाज़ दोनों बड़ी उत्सुकता से उसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

उस समय वे दोनों उस टूटे हुए भट्ठे की दीवार पर बैठे थे। रहीम ने जाते ही लिपटा हुआ नेपकिन और चाय का थर्मस उनकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "लो, तुम लोगों के लिए चाय और नाश्ता लाया हूं।"

ज़रीना ने दोनों चीज़ें थाम लीं; लेकिन शहबाज़ ने उसकी बात

5570
ACC. No.
CLASS No. 8-31 (BAL) NEB
24/11/87
R.B.A.N.'s Sound (Main) LIBRARY

की ओर ध्यान दिए बिना कहा, "खो बाबा, चाय तो फिर पी लेगा, पहले बताओ पुलिस ने क्या किया ?"

रहीम ने उसकी पीठ पर थपकी देते हुए कहा, "शुक्र करो कि वह सरदार पुलिस अफसर बड़ा खुदातर्स निकला। उसने काफी मेहरबानी किया वरना खुदा कसम, इस वक्त तक हम सब हवालात में होते। अब फिक्र करने की कोई बात नहीं। पहले तुम दोनों नाश्ता कर लो, फिर आगे की सोचेंगे।"

यह सुनकर शहबाज़ के मन को कुछ शान्ति हुई और वह ज़रीना के बराबर बैठकर चाय पीने लगा। नाश्ता समाप्त हुआ तो रहीम ने ज़रीना के सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "बेटी ! तुम ज़रा यहीं बैठो। हम आपस में कुछ सलाह-मशविरा कर लें।" यह कहकर रहीम ने शहबाज़ का हाथ थामा और उसे कुछ दूर ले गया, ताकि ज़रीना उनकी आवाज़ न सुन सके। उसने शहबाज़ को शुरू से आखिर तक सारी बात सुनाई और पुलिस अफसर की फिर बहुत तारीफ करते हुए कहा, 'पर शहबाज़, वह ठीक ही तो कहता था।"

"क्या ठीक बोलता था ?"

रहीम ने सिर उठाकर शहबाज़ की ओर अजीब नज़रों से देखा। उसने ऐसा महसूस किया जैसे शहबाज़ जान-बूझकर उसकी बात न समझने की कोशिश कर रहा हो। इससे उसके मन में थोड़ी-सी उलझन पैदा हुई। उसने माथे पर बल डालकर कहा, "यही कि अब तुम दोनों बालिग हो और जबकि तुम दोनों की आपस में इतनी गहरी मुहब्बत है तो तुम लोग शादी क्यों नहीं कर लेते।"

यह सुनकर शहबाज़ कुछ नहीं बोला। उसने अपना चेहरा भी दूसरी ओर फेर लिया, हालांकि रहीम उसके चेहरे की कैफियत देखना चाहता था ताकि उसे शहबाज़ के मन की दशा का कुछ तो पता चले। लेकिन जब शहबाज़ ने कुछ देर तक अपना चेहरा उसकी ओर नहीं फेरा तो उसने ज़रा बेचैनी से पूछा, "तुम चुप क्यों हो ?"

शहबाज़ ने मुंह फेरे बिना कहा, "तो क्या बाबा, तुम समझते

हो कि अम ज़रीना की ज़िन्दगी तबाह करना चाहता है ?"

"नहीं, मैं ऐसा नहीं समझता। इसीलिए तो कहता हूं कि तुम उससे शादी क्यों नहीं कर लेते, ताकि रोज़-रोज़ का यह झगड़ा ही खत्म हो जाए।"

अब शहबाज़ ने चेहरा उसकी ओर घुमाकर पल-भर के लिए उसपर एक उचटती हुई नज़र डाली और फिर बोला, "अम सोचता था कि अमारे बाग जाने के कुछ दिन बाद अम दोनों के मां-बाप अमारी शादी पर रज़ामन्द हो जाएगा।"

"लेकिन यहां बैठे-बैठे तुम्हें कैसे पता चलेगा कि तुम दोनों की शादी पर वे राज़ी हैं या नहीं।"

शायद शहबाज़ का इस बात की ओर ध्यान नहीं गया था। वह सोच में डूब गया। फिर बोला, "अच्छा, अम खुद जाकर पता लगाएगा।"

रहीम ने उसकी बात को रद्द करते हुए कहा, "क्या ज़रूरत है इस बात की। खामखा नई मुसीबत खड़ी हो जाएगी। मैं तो कहता हूं कि कल अपने-आपको कचहरी में पेश कर दो। ज़्यादा से ज़्यादा किसी वकील से मशविरा लेकर तुम दोनों का निकाह पढ़वाएंगे।"

यह सुनकर शहबाज़ के होंठों पर मुस्कराहट खेलने लगी। उसने रहीम के दोनों कमज़ोर कन्धों पर बड़े-बड़े हाथ रखकर कहा, "लेकिन अगर हमारे वालदएन (माता-पिता) रज़ामन्द हो जाएं तो बड़ी धूमधाम से हमारी शादी होगी।"

"लेकिन अगर वे न माने तो ?"

"तो भी अम वालदएन से कुछ रुपया लेकर आएगा। ज़रीना के लिए कुछ कपड़े और गहने खरीदेगा। उसे दुल्हन की तरह सजाएगा। बेफिक्र रहो बाबा, अब तक कम से कम मेरे वालदएन का दिल तो पिघल गया होगा। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं।"

"अच्छा, जो तुम्हारा यही ख्याल है तो फिर जल्दी से जल्दी अपने वतन को जाओ।"

"अमारे पीछे तुम ज़रीना का ख्याल रखेगा। अम आठ दिन में

लौट आएगा।'

"मैं ज़रीना का ख्याल रखूंगा।"

८

शहबाज़ से ये बातें हो चुकीं तो रहीम ने तय किया कि उन्हें वापस होटल में ही ले जाए। पुलिस अफसर के व्यवहार से उसकी हिम्मत बढ़ी थी। उसने सोचा कि सरदार ने जब यह सुझाव दिया है तो आवश्यक है कि वह उन्हें इतना मौका दे कि वे उस सुझाव पर अमल भी कर सकें। उसे इस बात का बिल्कुल गुमान नहीं था कि सरदार ने जो कुछ उससे कहा था, ईमानदारी से नहीं कहा था।

अपनी बात समाप्त करके वे दोनों ज़रीना के पास पहुंचे। रहीम ने ज़रीना का बाज़ू पकड़कर उसे सहारा देते हुए कहा, "चलो बेटी, अब तुम लोग होटल वापस चलो।"

शहबाज़ दबी आवाज़ में बोला, "रहीम बाबा, अगर कहीं रात के समय पुलिस ने छापा मार दिया तो ?"

"नहीं, मुझे पूरा यकीन है कि वह सरदार इस किस्म की हरकत नहीं करेगा। उसकी शक्ल और बातचीत के अन्दाज़ से ही पता चलता था कि वह सारे मामले की असलियत को समझ गया है। इसमें कोई शक भी नहीं कि अगर तुम दोनों शादी कर लो तो कानूनी तौर पर या सामाजिक दृष्टि से कोई तुम लोगों पर उंगली भी नहीं उठा सकता। अगर इतना कर लो तो पुलिस की ज़िम्मेदारी भी खत्म हो जाएगी क्योंकि पुलिस बेकार के झंझटों में टांग फंसाकर अपना वक्त बरबाद नहीं करना चाहती।"

इस तरह बातें करते वे वापस लौट आए। रात का खाना समाप्त होने के बाद शहबाज़ खां ज़रीना को लेकर छोटी कोठरी में जा घुसा और उसे सारी समस्या की ऊंच-नीच समझाने लगा।

ज़रीना उसके साथ ही जाना चाहती थी। वह उसके बिना एक पल भी अकेली नहीं रहना चाहती थी। वह बच्चों की तरह सिसकियां भर-भरकर रोए जा रही थी। शहबाज़ ने सोचा कि ये अच्छी-खासी बालिग लड़कियां और औरतें न जाने इतनी जल्दी रोने क्यों लगती हैं। रोने से पहले एक पल-भर को भी नहीं सोचतीं, और फिर आंसू न जाने कहां से बहते चले आते हैं।

कुछ देर चुप रहकर शहबाज़ ने ज़रीना के चेहरे की ओर देखा। उसकी आंखें रो-रोकर रुई के भीगे गालों की तरह नज़र आ रही थीं। आखिर उसने प्यार से ज़रीना को अपने बाज़ुओं में ले लिया और बड़े धीरज से नर्म स्वर में समझाने लगा, "आठ दिन, सिर्फ आठ दिन। ज़रीना, मैं कोई बहुत दिनों के लिए नहीं जा रहा हूं। अव्वल तो मैं इससे भी पहले आ जाऊंगा, लेकिन मैं सिर्फ यह कहता हूं कि अगर बहुत दिन भी लगे तो भी मैं आठवें दिन यहां पहुंच जाऊंगा। क्या तुम्हें मुझपर इतना भी एतबार नहीं है ?"

ज़रीना ने सिर हिलाकर हामी भरी। शहबाज़ फिर बोला, "शाबाश ! शेर की बच्ची बनो। देखो, यह तो तुम जानती ही हो कि अब पुलिस हमारे पीछे लगी है, इसलिए हम दोनों साथ-साथ चलेंगे तो इसमें कोई शक नहीं कि हम दोनों पकडे जाएंगे। केवल मर्द का क्या है ? मर्द के लिए भागना, छिपना और चकमा देना आसान होता है। मुझे तो पूरा यकीन है कि अब तक हमारे मां-बाप का दिमाग ठिकाने आ ही गया होगा। और अगर उनके खयालात अब भी वही हैं जो पहले थे तो मैं अपनी मां से कुछ रुपये और गहने लेकर निकल आऊंगा। तब मैं अपनी मां को भी सारी बात बता दूंगा। वह मुझे बहुत चाहती है। इसलिए मेरी बात को रद्द नहीं करेगी। जब उसे पता चलेगा कि उसका बेटा ज़रीना को अपनी दुल्हन बनाएगा तो वह बहुत खुश होगी। जब मैं लौटकर आऊंगा तो तुझे गहनों से लाद दूंगा, तुझे दुल्हन के कपड़े पहनाऊंगा, तुझसे निकाह पढ़ूंगा। फिर हम दोनों यहीं रहीम बाबा के पास रहा करेंगे। मैं अपना कारोबार शुरू कर दूंगा। बोलो, तुम खुश

हो न ? अगर खुश हो तो मुस्करा दो।"

ये सुनकर ज़रीना की आंखों में फिर से आंसू उबल पड़े और होंठों पर मुस्कराहट आ गई। जैसे बरसात की भीगी रातों में फुलझड़ी छूट रही हो।

ये बातें हो चुकीं तो शहबाज़ ज़रीना की कोठरी से निकलकर स्टोर-रूम में आया और अपनी खाट पर लेट गया। उसने दूसरे ही रोज़ मुंह अंधेरे वहां से चल देने का योजना बनाई। थोड़ी देर तक वह छत की ओर देखता रहा। फिर उसकी आंखें नींद से बोझिल हो गईं और वह सो गया।

ज़रीना की आंखों में नींद नहीं थी। वह पहले तो फटी-फटी आंखों से छत की ओर देखती रही। फिर एकदम उलटकर पेट के बल लेट गई और तकिये पर गाल रखकर रोने लगी। जब कभी वह ऊंघने लगती तो उसकी पलकों पर आंसू कांपते ही रहते। इसी तरह उसकी रात कट गई। यहां तक कि दरवाज़े का कुंडा खुलने की आवाज़ आई और फिर दरवाज़ा खुला तो सामने शहबाज़ खड़ा था और उसके पीछे रहीम मियां। शहबाज़ ने धीमे स्वर में पूछा, "ज़रीना ! जाग रही हो क्या ?"

ज़रीना उठकर बैठ गई। शहबाज़ ने आगे बढ़कर प्यार से उसका बाज़ू थामा। वह टांगें चारपाई से नीचे लटकाकर पांव से अपने जूते टटोलने लगी। शहबाज़ ने जल्दी से जूते उसके पांव में पहना दिए। जैसे वह कोई नन्ही बच्ची हो। जरीना ने जल्दी से उसके हाथों को रोकने की कोशिश की, क्योंकि उसे यह हरगिज़ पसन्द नहीं था कि शहबाज़ उसके जूतों या पांव को छुए। लेकिन उसके रोकते-रोकते वह अपना काम पूरा कर चुका था।

वे तीनों कोठरी में से निकले। धीमे-धीमे कदम उठाते हुए एक-डेढ़ फर्लांग तक चले गए। कोई बात नहीं हुई। वे तीनों चुप थे, तीनों अपने-अपने विचारों में खोए हुए थे।

वे चिनारों के उस झुंड तक पहुंच गए जहां से आगे दूर तक कोई पेड़ नज़र नहीं आता था। केवल झाड़ियां ही झाड़ियां थीं।

यहां शहबाज़ एकाएक रुक गया। उसने घूमकर ज़रीना की ओर देखा, जो चांदनी रात में चिनार की छाया तले एक मूर्ति की तरह नज़र आ रही थी। फिर उसने अपने दोनों हाथ ज़रीना के दोनों कन्धों पर रख दिए और भारी आवाज़ में बोला, "अच्छा ज़रीना, अब तुम्हें खुदा के हाथ सौंपा।"

ज़रीना की आंखें झुकी हुई थीं। उसने हाथ उठाकर सिर से खिसकती हुई चुनरी को ऊपर खींचा लेकिन मुंह से कुछ नहीं बोली।

इस अवसर पर शहबाज़ ज़्यादा लम्बी-चौड़ी बातें नहीं करना चाहता था। वह ज़रीना से सब कुछ रात ही कह चुका था। पल-भर ज़रीना की ओर देखते रहने के बाद उसने रहीम का हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया और भावनापूर्ण स्वर में बोला, "रहीम बाबा, ज़रीना का ख्याल रखना, यह मेरी जान है। मैं इससे ज़्यादा कुछ नहीं कहना चाहता।"

बेचारे रहीम को भी कुछ नहीं सूझ रहा था। वह भी कुछ नहीं बोला। उसने शहबाज़ को केवल हाथ की हल्की-सी थपकी दी और शहबाज़ हाथ में लाठी तौलकर वहां से चल दिया।

मद्धिम चांदनी में उसे अपने-आपसे दूर जाते देखकर ज़रीना की आंखों में आंसू उबल पड़े। इतने में शहबाज़ ने एक बार फिर घूमकर देखा और अपने दोनों हाथों की आठ उंगलियां दिखाते हुए हंसकर बोला, "आठ दिन, सिर्फ आठ दिन।"

तब ज़रीना उसे जाते देखती रही। झाड़ियों के अन्दर ही अन्दर सरकती हुई पगडंडी पर वह बढ़ता ही चला जा रहा था। उसकी तुर्रेदार पगड़ी के दो शमले एक ऊपर और एक नीचे हवा में लहरा रहे थे। धीरे-धीरे झाड़ियां उसे निगल गईं और ज़रीना ने एकदम अपना चेहरा दोनों हाथ में ढाक लिया।

रहीम ने बढ़कर हाथ उसकी पीठ पर रखा और तब वे सुस्त कदमों से होटल की ओर लौट पड़े।

ज़रीना ने समझा था कि शहबाज़ के जाने के बाद उसे केवल

आठ दिन गुज़ारने होंगे, केवल आठ दिन उंगलियों पर गिनने होंगे। उसने इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि दिन और घंटे नहीं उसे एक-एक पल गिनना पड़ेगा, जुदाई की एक-एक घड़ी पहाड़ बन जाएगी और उसे हर ऐसे पहाड़ का बोझ अपने मन पर उठाना होगा।

इतने दिन वह चुप रही। सब काम इस तरह करती थी जैसे सपने में चल-फिर रही हो। रहीम उसे हर रोज़ तसल्ली देता, हर घड़ी उसे खुश रखने की कोशिश करता, और जब कभी वह उसे हंसाने के लिए कोई बात कहता तो उसकी आंखों में आंसू आ जाते।

ज़रीना अक्सर मौका मिलने पर आबशार की ओर जाती। वह देर तक आबशार के गिरते हुए पानी को देखती रहती। कैसे वह अपने भारी बहाव के साथ घाटी में यूं गिरता था जैसे कोई बाज़ कबूतर पर झपट्टा मारता है। रास्ते में उस झरने के कुछ भाग चट्टानों से भी टकराते, जिससे बहुत तेज़ शोर उठता। लेकिन वह पानी था कि अपने बहाव में झपटता ही चला जाता।

बिल्कुल इस झरने की तरह एक झरना उसके मन में था, और इसीकी तरह एक और झरना शहबाज़ के मन में था। ये बातें सोच-सोचकर उसका दिमाग उलझने लगता तो वह छोटे-छोटे कदम उठाती हुई जिधर से झरने का पानी आता था उधर ही चल देती। झाड़ियों से घिरे हुए स्थान तक पहुंचकर वह रुक जाती। अगर कोई अकेली-दुकेली औरत या लड़की नज़र आती तो उससे एक-आध बात हो जाती। लेकिन अधिकतर वह अपने ही विचारों में डूबी रहती। जब तक वह शहबाज़ के साथ रही तब तक उसके मन में इस किस्म की बातें नहीं आईं। अब अकेले में अक्सर बीते दिनों की याद किया करती।

जब वह छोटी-सी थी तो अक्सर अपने इलाके में घनी दाढ़ी वाले लम्बे-चौड़े पठानों को हाथों में राइफलें ताने देखा करती थी। वे कैसे अपनी चमकती हुई आंखें दूर तक फैले हुए चटियल पहाड़ों

पर डालते हुए ऊंटों को दौड़ाते चले जाते थे। अपने पीछे धूल के बादल छोड़ जाते और फिर एकाएक तड़ातड़ राइफलों की गोलियां चलने लगतीं तो वह सहम जाती।

रातों को वह कच्ची ईंटों के बने हुए मकानों वाले गांव से बाहर पठानों को आग के अलाव के चारों ओर घेरा डाले बैठे हुए देखती। उन्हीं रातों को उसने आदम और दुक्खिनिये, मूसा खां और गुलमकई, मोमिन खान और शीरीं, जलात और महबूबा के इश्क के किस्से सुने थे। उसकी अपनी भाषा पश्तो में कोई पठान ऊंची लय के साथ किस्से गा-गाकर सुनाता। सुनने वाले झूमते और उनके साथ ही उनके पीछे ज़मीन पर पड़ती हुई उनकी परछाइयां भी झूम-झूमकर लहरातीं। जब गाने वाले की आवाज़ कुछ पलों के लिए बन्द हो जाती तो फिर इतने समय में रबाब के तारों की झंकार वातावरण में लहराने लगती। लेकिन रबाब की सिसकियों में एक तीव्रता और एक उबलता हुआ जोश भी महसूस होता था। ये आवाज़ें रात की उदास और गम्भीर खामोशी में नाचती और मचलती हुई ज़िन्दगी की लहरें दौड़ा देती थीं।

ऐसी महफिलों में औरतों का जाना मना था, लेकिन ज़रीना कुछ बड़ी हो जाने पर भी दूर ही से चोरी-छिपे इन गीतों को सुना करती। उसे ये गीत केवल इश्क के किस्से नहीं मालम होते थे, बल्कि उसे इनमें जीवन का आदर्श नज़र आता था। कैसे एक ऊंची और तीव्र भावना के ज़ोर से जीवन की निराशा-भरी समस्याओं से टक्कर ली जाती है और कैसे एक इन्सान के लिए इस टक्कर में फना हो जाना ही उसका सबसे महान कर्तव्य है।

वह ज्यों-ज्यों खुद बड़ी होती गई, त्यों-त्यों शहबाज़ भी बड़ा होता गया। पहले जो उनका आपस में लगाव था, अब उस लगाव ने एक ऐसा रूप धारण किया जो खुद उन्हींकी समझ में नहीं आ रहा था। उस उम्र में ज़रीना के लिए यह समझना भी असम्भव था कि कौन आदमी ज्यादा सुन्दर था या किस आदमी में कौन-सा विशेष गुण था। शहबाज़ उसे सदा से अच्छा लगता था। बेशक

अब उसका अच्छा लगना एक नया रूप धारण कर चुका था, लेकिन फिर भी उसे इस बात का एहसास नहीं था कि शहबाज़ अपनी शक्ल-सूरत के लिहाज़ से हज़ारों में एक था, या वह उसके जाने-पहचाने युवकों में सबसे ज्यादा शक्तिशाली था। हां, उसे शहबाज़ सबसे अलग उस समय नज़र आने लगा जब रबाब बजाने और टप्पे गाने के लिए शहबाज बहुत मशहूर हो गया। आग के अलाव के चारों ओर बैठने वालों मे धीरे-धीरे शहबाज़ ने अपनी खास जगह बना ली। इश्किया किस्सों को सुनने के शौकीन हर रात शहबाज़ की प्रतीक्षा किया करते। ज़रीना भी चोरी-छिपे अपनी एक-दो सहेलियों को लेकर किसी चट्टान की ओट में इन गीतों को बड़े शौक से सुना करती थी।

जब शहबाज़ अपनी उंगलियों में रबाब के तारों को छेड़ता तो ज़रीना उसे देखे बिना ही पहचान लेती कि रबाब बजाने वाला कौन है।

रबाब की झंकार चोटियल पहाड़ियों की चोटियों पर से फिसलती हुई दूर तक निकल जाती और फिर जब टप्पे गा-गाकर कोई पुरानी प्रेम-कहानी सुनाने लगता तो आकाश में तारे आंखें झपकाना भूल जाते। यह महसूस करके कि इन गीतों को गाने वाला उसका और केवल उसका शहबाज़ था, ज़रीना का दिल मोर की तरह नाच उठता।

शहबाज़ की इस बात से ज़रीना की नज़रों में वह दूसरों की अपेक्षा ऊपर उठ गया और इन बातों का एहसास उसे बाद में हुआ कि शहबाज़ कितना खूबसूरत और बांका जवान है :

यह सम्बन्ध बढ़ते-बढ़ते एक दिन ऐसा भी आया जबकि उन दोनों ने महसूस किया कि इस दुनिया में उन्होंने केवल एक-दूसरे का जीवन-भर साथ निभाने के लिए जन्म लिया था। यह विश्वास धीरे-धीरे अन्धविश्वास बन गया। लेकिन उनके मां-बाप शादी पर राज़ी नहीं थे।

इस किस्म की बातें सोचते-सोचते ज़रीना बिल्कुल बेखबर हो

जाती। उसको इस बात की भी खबर नहीं थी कि कौन औरत या लड़की किस समय आई और किस समय पहाड़ के पहलू में बसे हुए अपने गांव को लौट गई। जब एकाएक वह चौंकती तो देखती कि वह अकेली ही रह गई है। एकाएक उसे डर-सा होता। वह फटी-फटी नज़रों से दायें-बायें देखने लगती, तब घबराकर उठ खड़ी होती और वापस होटल की ओर चल देती।

एक-एक पल गिनने के बाद दिन गुज़रता और एक-एक घड़ी तड़पने के बाद रात समाप्त होती। इस तरह पांच दिन गुज़र गए। और अब धड़कते दिल के साथ वह इस बात की आस लगा बैठी कि शहबाज़ अब किसी समय भी वहां आ सकता था। छः दिन, सात दिन, आठ दिन गुज़र गए लेकिन शहबाज़ नहीं आया।

रहीम ने उसे तसल्ली देते हुए कहा, "बेटी! घबराने की कोई बात नहीं। यह तो अक्सर देखने में आता है कि आदमी यह समझ-कर घर से निकलता है कि वह दो दिन में अपना काम समाप्त करके लौट आएगा, लेकिन दो के चार दिन लग जाते हैं। तुम्हें परेशान होने की कोई बात नहीं। क्योंकि शहबाज़ को वापस लौटने की तुमसे ज़्यादा फिक्र होगी। वह इस खयाल ही से बेचैन हो रहा होगा कि न जाने उसकी ज़रीना उसके इन्तज़ार में कितनी बेचैन हो रही होगी। इसमें तो कोई शक नहीं कि अगरचे तुम दोनों के जिस्म अलग-अलग हैं, लेकिन तुम लोगों की रूह एक है।"

रहीम मियां की इन बातों से ज़रीना के मन को तसल्ली हो जाती, क्योंकि इस कदर ज़्यादा इन्तज़ार करने के बाद अब उसकी हालत ऐसी हो गई थी कि अगर उसे तसल्ली की मामूली से मामूली बात कही जाती तो वह उसका सहारा ले लेती।

एक सप्ताह के बाद दूसरा सप्ताह, दूसरे के बाद तीसरा सप्ताह भी गुज़र गया, यहां तक कि एक महीना खत्म हो गया, लेकिन शह-बाज़ लौटकर नहीं आया। लौटकर आना तो दूर रहा, उसने दो सतर का एक खत भी नहीं लिखा। ज़रीना उसके बारे में जितना भी सोचती उतना ही उसके दिमाग की उलझन बढ़ जाती। यहां

तक कि एकाएक उसे अपने सामने एक इतनी बड़ी दीवार दिखाई देती जिसकी ऊंचाई बादलों में खो जाती और वह दायीं-बायीं दिशा को इतनी दूर तक फैली हुई थी कि उसकी सीमा का कुछ पता ही नहीं चलता था।

शहबाज़ के जाने के बाद, कुछ दिनों तक हर काम वह बड़ी सुस्ती से करती रही, लेकिन फिर उसकी हरकतों में तेज़ी आने लगी। उसे यूं महसूस होने लगा जैसे उसका शरीर उससे बिल्कुल ही अलग चीज़ हो। सुबह से रात तक का समय अलग-अलग कामों में बंटा हुआ था। वह मुंह अंधेरे से दोपहर के खाने तक मशीन की तरह अपना काम करती। खाना खाने के बाद चन्द घण्टे फुर्सत के होते थे, जिन्हें वह झरने के आसपास गुज़ारती, या फिर ऊपर की ओर जाकर कुछ कपड़े ही धो डालती। अब वह चलती-फिरती तो वह दायें-बायें नहीं देखती थी। न उसे इस बात का पता चलता था कि उसके इर्दगिर्द क्या हो रहा है; न वह किसीकी ओर देखती थी और न उसे यह महसूस होता था कि कोई उसकी ओर देख रहा है या नहीं।

एक शाम मि० जमाल ने दूर ही से ज़रीना की झलक देखी तो रहीम के कन्धे पर हाथ रखकर पूछा, "रहीम मियां! यह छोकरी कौन है?"

९

जमाल साहब दो ही दिन पहले होटल में आकर ठहरे थे। वे कमरा नं० ९ में थे, जोकि ऊपर वाली मंज़िल पर था। उम्र पच्चीस-छब्बीस वर्ष के करीब। इकहरा बदन, साधारण कद, नाक-नक्शा वाजबी परन्तु तबीयत में चंचलता बहुत थी और फिर बड़े बातूनी और मिलनसार भी थे। न जाने इस होटल का पता कहां से मिला।

यह स्थान उनकी उम्र वाले लोगों के लिए काफी बेरौनक और फीका था। उन्होंने आते ही इधर-उधर घूमकर पहाड़ियों के सुन्दर दृश्य देखे। होटल के कमरों की ताक-झांक की। उनका यह विचार ही हो रहा था कि अब यहां की सैर काफी हो चुकी, अब कहीं और चलना चाहिए, लेकिन अचानक ही उन्हें ज़रीना चलती-फिरती नज़र आई। मन में लड्डू फूटने लगे और वे अक्सर उसकी ताक में रहने लगे।

रहीम से तो आते ही बेतकल्लुफी हो गई, क्योंकि जमाल मियां खाने-पीने के बड़े शौकीन थे। जेब में पैसा भी था। उधर रहीम मियां को अपने हुनर पर गर्व था। वह उस कवि की भांति था जो दूसरों को अपनी कविता सुनाने को बेचैन रहता है और जब कोई कदरदान मिल जाए तो कवि साहब उसकी बलाएं लेने लगते हैं। रहीम को तो हमेशा ही ऐसे आदमी की तलाश रहती थी जो उसके बनाए हुए भोजनों की कद्र कर सके, और फिर जो ग्राहक मुंहमांगे दाम भी दे उसके क्या कहने। जमाल जैसा कदरदान पाकर रहीम की भी खुशी का ठिकाना न रहा, क्योंकि ऐसा कदरदान तो वर्षों बाद हीं कहीं मिलता है।

जब जमाल ने ज़रीना के बारे में पूछा तो रहीम की आंखें डब-डबा आईं। बोला, "बाबूजी, बड़ी बदकिस्मत है यह लड़की। जिसका इसे इन्तज़ार है वह दो महीने गुज़र जाने पर भी नहीं आया। यहां तक कि उसने एक खत तक नहीं लिखा।"

जमाल ने हमदर्दी जताते हुए पूछा, "आखिर मामला क्या है रहीम मियां ?"

अब रहीम अंगोछे को कमर से लपेटते हुए वहीं बैठ गया और उसने शुरू से आखीर तक का सारा किस्सा कह सुनाया, जिसे सुन-कर जमाल ने कहा, "मियां, भला जाने वाले कब लौटकर आते हैं !"

"यह तो ठीक है, लेकिन इस बेचारी की ज़िन्दगी तो समझो तबाह हो गई। यह जाए तो कहां जाए ! मां-बाप के पास लौटना मुश्किल है। आप तो जानते ही हैं, एक पठान इस बात को कभी

सहन नहीं कर सकता कि उसकी बेटी इतने लम्बे अर्से तक बाहर रहे। अगर यह वापस लौटकर जाए भी तो वे इसे कत्ल कर डालेंगे। और जिसका इसे सहारा था उसने साथ ही छोड़ दिया। सच, इसकी हालत देखकर कहना पड़ता है कि मर्द कई दफा बड़ी कमीनी हरकतें कर डालते हैं। अब कोई उससे पूछे कि अगर तुझे दिल ही बहलाना था तो इस किस्म की मुहब्बत तो वहां चल ही रही थी। बेचारी को घर से भगाने की जरूरत ही क्या थी! मनबहलाव तो वहां भी हो सकता था।"

उन दोनों की ये बातें हो चुकीं तो जमाल ने बावर्चीखाने के चक्कर लगाने भी शुरू कर दिए। चूंकि वह नित्य नये खानों का आर्डर देता रहता था और फिर उससे रहीम को आमदनी भी काफी थी इसलिए रहीम उसे बावर्चीखाने में आने से मना नहीं करता था।

वहां अकसर ज़रीना कुछ न कुछ काम करती दिखाई देती थी। जमाल ने कभी उससे बातचीत करने की कोशिश नहीं की, क्योंकि अभी तो उसकी सुन्दरता की झलक देख लेना ही काफी था। अभी तक उसने सारा ज़ोर रहीम पर ही लगा रखा था। उसके खानों की तारीफ, यूरोप के बारे में उसकी बातों की तारीफ और उसकी सूझ-बूझ की तारीफ। यहां तक कि रहीम को बिल्कुल यकीन हो गया कि जमाल वाकई खानदानी नौजवान है जो किसीके गुण और कला की कद्र करना जानता है।

अब जमाल ने ज़रीना के प्रोग्राम पर भी ध्यान देना शुरू किया तो उसे पता चला कि ज़रीना हर रोज़ काम से फुरसत पाकर आबशार की ओर जाती है। फिर वहां से नदी में नहाने जाती है। जमाल उसे एक रोज़ रास्ते में ही मिल गया जबकि वह नदी से लौट रही थी और उसकी ओर यूं देखा जैसे अचानक ही मुलाकात हो गई हो और फिर ठिठककर खड़ा हो गया और कुछ आश्चर्य-भरे स्वर में बोला, "अरे ज़रीना, तुम कहां से आ रही हो?"

ज़रीना रुक गई, क्योंकि वह जमाल को पहचानने लगी थी। वह घंटों बावर्चीखाने में रहीम से इधर-उधर की बातें किया करता

था। लेकिन वह मुंह से कुछ नहीं बोली तो जमाल ने फिर कहा, "ओ समझा, तुम नदी से आ रही हो कपड़े धोकर। सचमुच वह जगह आंखों के लिए अच्छी है। चारों ओर झाड़ियां ही झाड़ियां हैं और फिर मैंने यह भी देखा है कि उधर मर्द नहीं जाते। मेरे ख्याल में सब जानते हैं कि वह जगह केवल औरतों के लिए ही है!"

जमाल ये बेतुकी बातें किए जा रहा था, लेकिन ज़रीना ने किसी बात का उत्तर नहीं दिया तो वह फिर जल्दी से बोला, "अच्छा तो तुम चलो, मैं ज़रा घूमने जा रहा हूं।"

ज़रीना खड़ी भी रही तो ऐसे कि जमाल की बात खत्म होते ही वह वहां से चल देगी। उसके चेहरे से लग रहा था जैसे उसने जमाल की बात सुनी ही न हो, या अगर सुनी भी तो उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

ज़रीना की खातिर ही जमाल रुक गया था, वरना वह कई दिन पहले ही इस होटल से चला गया होता। पिछले तीन-चार दिन से बात करने का मौका तलाश कर रहा था। आखिर आज उसने बात कर ही ली।

ज़रीना ने उसकी बात को कान धरके सुना नहीं, वह मुस्कराई नहीं, बल्कि उसके चेहरे पर कोई भी भावना दिखाई नहीं दी। इसके बावजूद जमाल का मन नाच उठा था। उसे इस बात का एहसास भी नहीं था कि उसने केवल चन्द बेतुकी बातें कही थीं। उसे तो केवल यही खुशी थी कि आज ज़रीना अकेले में उसके सामने खड़ी रही और वह बोलता चला गया।

अपने ही ध्यान में वह मुंह ही मुंह में कुछ गुनगुनाता आबशार तक पहुंचा। सूर्य अगरचे डूबा नहीं था, लेकिन पहाड़ी की ओट में आ गया था जिससे पहाड़ी की फैली हुई छांव झरने के ऊपर तक आ पहुंची थी। नीचे घाटी में सुरमई रंग-सा फैला दिखाई देता था, और इस सुरमई रंग में रंगी हुई घाटी की सभी चीज़ें बड़ी सुन्दर दिखाई देती थीं। वह कितनी ही देर तक खड़ा अपने नीचे फैली हुई घाटी को देखता रहा। उसे यूं महसूस हो रहा था जैसे

ज़रीना से मिलने की पहली सीढ़ी वह चढ़ चुका हो। अब उसे अपने सामने अपनी मंज़िल साफ दिखाई देने लगी थी।

शायद बहुत कम औरतों को इस बात का एहसास होता है कि उनके ज़रा-से ठिठक जाने से, या ज़रा-सा मुस्करा देने से या इसी किस्म की मामूली-सी हरकतों से मर्द के दिल में क्या आशाएं उभर आती हैं। कैसे उसके जीवन का हर पल जगमगा उठता है।

जमाल झरने से ऊपर नदी के किनारे-किनारे दूर तक टहलता चला गया। वह उस स्थान से भी गुज़रा जहां केवल औरतें ही नहाती-धोती थीं। झाड़ियों से घिरी हुई यह जगह उसे बहुत पसन्द आई। उसने सोचा कि ज़रीना से बातचीत करने के लिए तो यह जगह बहुत ही उपयुक्त है परन्तु मुश्किल यह थी कि उस जगह कोई न कोई दूसरी औरत भी मौजूद रहती थी। फिर उसने मन को ढाढस दिया कि अब ज़रीना खुद मिलना चाहेगी तो सौ ढंग खुद ही निकाल लेगी।

वह उस समय तक टहलता रहा जब तक कि सूर्य अस्त नहीं हो गया। एकाएक उसे खयाल आया कि आज उसने शाम की चाय भी नहीं पी थी। चुनांचे वह एकदम वापस लौट पड़ा। जब वह बरामदे में से गुज़रकर सीढ़ियों पर चढ़ने लगा तो एक कोने से रहीम निकल आया और बोला, "आज हुज़ूर ने चाय भी नहीं पी, क्या कहीं दूर घूमने निकल गए थे?"

"हां, रहीम मियां, घूमने के लिए तो यहां आए ही हैं। अच्छा अब तुम कमरे में ही चाय ले आओ।"

"नाश्ते के लिए क्या लाऊं?"

"कुछ नहीं। काफी देर हो गई है। अगर इस वक्त नाश्ता कर लिया तो रात के खाने का मज़ा नहीं आएगा। और हां, आज तो तुमने मटन-पुलाव तैयार किया होगा।"

"जी, अभी तो तैयार नहीं है। लेकिन आपके खाने के वक्त तक तैयार हो जाएगा।"

यह कहते-कहते रहीम ने अंगोछा अपने एक कन्धे से उठाकर

दूसरे कन्धे पर फेंका और फिर वह धीरे-धीरे बावर्चीखाने की ओर चल दिया।

जमाल ने ऊपर पहुंचकर दरवाज़ा खोला और उसकी नज़र खिड़की में से सीधी उस जगह पहुंची जहां दो घड़ी रुककर उसने ज़रीना से बात की थी। वहां से उसकी नज़र और आगे झरने तक पहुंची। वहां से झरने का पानी नीचे की ओर झुकता नज़र आता था, लेकिन घाटी दिखाई नहीं देती थी।

जमाल का दिमाग कई किस्म के विचारों से भरा था। वह जल्दी से जल्दी ज़रीना को पा लेना चाहता था लेकिन वह अपनी मंज़िल तक कैसे पहुंच सकेगा, यह कभी उसकी समझ में ठीक तरह से नहीं आ रहा था। फिर भी वह खुश था जैसे उसके रास्ते की बड़ी रुकावट दूर हो गई हो।

उसने अपनी छड़ी बिस्तर पर फेंकी। कोट भी उतारकर वहीं फेंक दिया और खुद एक भारी लम्बी आरामकुर्सी पर अधलेटा-सा हो गया। उसके सामने दीवार पर रानी विक्टोरिया की बहुत बड़ी तस्वीर लटक रही थी। उसके साथ ही बादशाह एडवर्ड की भी उतनी ही बड़ी तस्वीर थी।

उनसे भी परे एक और बड़ी रंगदार तस्वीर लटक रही थी। यह खूबसूरत चित्र था। इसमें राजकुमारी दमयन्ती को दिखाया गया था। उसने अपने कोमल हाथों से उस राजहंस को थाम रखा था जो राजा नल से उसके लिए संदेशा लाया था।

वह काफी देर तक उस तस्वीर को देखता रहा। इतने में रहीम चाय की ट्रे लेकर आ पहुंचा। ट्रे मेज़ पर रखकर, रहीम ने अपनी आदत के अनुसार, झाड़न से यूं ही मेज़ को साफ करते हुए पूछा, "कहिए साहब, आज तो आप खोए हुए से नज़र आते हैं।"

जमाल ने चौंककर रहीम की ओर देखा, फिर बोला, "नहीं तो! हां रहीम मियां, आज जब मैं कुछ देर पहले घूमने के लिए निकला तो आगे से तुम्हारी ज़रीना मिल गई।"

"जी हां, वह नदी से कपड़े धोकर लौट रही होगी।

"मेरे ख्याल में यही बात होगी ।"

"क्या आपकी कुछ बातचीत भी हुई ।"

"नहीं तो, बात क्या होती ! लेकिन भाई, मुझे उस बेचारी पर बहुत रहम आता है ।"

यह सुनकर रहीम ने एक गहरी सांस ली और फिर बोला, "अजी, सच पूछिए तो मुझे तो अब अच्छी तरह से नींद भी नहीं आती । बेचारी इतने अर्से से मेरे पास रह रही है । मैं तो उसे बेटी की तरह चाहने लग गया हूं । क्या कहूं, इसकी हालत तो मुझसे देखी नहीं जाती ।"

"रहीम मियां, अब तो इस बेचारी का बोझ तुम्हारे कन्धों पर है । किसी न किसी तरह संभाल लो । उसकी ज़िन्दगी खराब न होने देना ।"

"साहब, जो मुसीबत उसपर पड़ी है उसपर तो मेरा कुछ बस नहीं चल सकता । मैं तो उसे यही समझाया करता हूं कि वह सब्र से काम ले, शायद अल्लाह को यही कुछ मंजूर था ।"

जमाल ने प्याले में चीनी डाली, चाय उंडेली, दूध मिलाया और फिर एक गरम-गरम घूंट भरकर बोला, "नहीं रहीम मियां, जो बीत चुकी सो बीत चुकी । अब तुम उसका ध्यान बीती बातों से हटाने की कोशिश करो । अब तो आगे की बात होनी चाहिए । अभी वह कमसिन है, हसीन है, सारी ज़िन्दगी उसके सामने पड़ी है । खुद ही सोचो कि इस तरह बीती बातों में डूबे रहने से ज़िन्दगी के दिन कैसे कट सकेंगे ।"

"अरे साहब, मैं तो इन बातों को समझता हूं लेकिन वह अभी बच्ची है । वह भी तो समझे !"

जमाल ने बड़े-बूढ़ों की तरह हाथ उठाकर कहा, "हिम्मत से काम लेना होगा । अभी तो वह बच्ची है, अक्ल की कच्ची है । आहिस्ता-आहिस्ता समझाने से ही समझेगी ।"

"तो साहब आप ही समझाइए न ! हम हैं अनपढ़, मूर्ख और आप ठहरे पढ़े-लिखे । हो सकता है कि आपके कहने का ही उसपर

कुछ असर हो जाए।"

यह सुनकर जमाल ने सिर झुका लिया जैसे गहरे सोच में डूब गया हो। फिर गम्भीर स्वर में बोला, "अच्छा तुम कहते हो तो कभी मौका पाकर समझाने की कोशिश करूंगा। हालांकि किसी के निजी मामले में दखल देना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

उस रात जमाल बावर्चीखाने में जा पहुंचा तो रहीम अपना पीने का प्रोग्राम समाप्त कर चुका था इसलिए काफी मग्न था। जमाल को देखते ही बोला, "साहब! मैं आपके कमरे में आपसे खाने के लिए पूछने आने ही वाला था!"

जमाल ने रहीम की बात काटते हुए कहा, "हां रहीम मियां, अकेले कमरे में तबीयत घबरा रही थी। मैंने सोचा कि चलो, बावर्चीखाने में बैठकर ही खाना खा लूं। खाने के साथ-साथ गपशप भी चलती रहेगी।"

यह सुनकर रहीम झट अपनी कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया और बोला, "यहां बैठने का अच्छा इन्तज़ाम तो नहीं है, लेकिन अगर आपका दिल चाहता है तो बड़ी खुशी से यहीं बैठकर खाना खाइए।"

जमाल ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "बस मुझे मटन-पुलाव दे दो, और ज़्यादा खाने का मूड नहीं है।"

"क्यों, क्या पेट खराब रहता है?"

जमाल ने जल्दी से एक छिपी नज़र ज़रीना की ओर डाली और उत्तर दिया, "नहीं तो, पेट में कोई खराबी नहीं; लेकिन न जाने क्यों मेरी तबीयत किसी काम में नहीं लगती। न नींद आती है, न भूख लगती है और न किसी काम में मन लगता है।"

रहीम उसकी बात का कोई गहरा मतलब नहीं समझा, चुनांचे वह बोला, "बाबूजी, यह जगह तो ऐसी है कि चाहे कोई कितना भी उदास क्यों न हो उसकी उदासी दूर हो जाती है। अभी तो आपको यहां आए दस-बारह ही दिन हुए हैं, लेकिन अगर आप कुछ

दिन और रुके रहे तो ज़रूर ही आपकी तबीयत पर बहुत अच्छा असर पड़ेगा।"

"हां भई, इसी ख्याल से तो यहां रुका हुआ हूं। तुम भी मेरे लिए दुआ मांगते रहो।"

"अजी, हमारी दुआएं तो हमेशा ही आपके साथ हैं।"

अब तक पुलाव की प्लेट जमाल के सामने मेज़ पर पहुंच चुकी थी। रहीम ने धीरे से कहा, "यह पुलाव ज़रीना ने बनाया है!"

जमाल चिल्लाकर बोला, "क्या कहा, ज़रीना ने बनाया है!"

रहीम ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "जी···हां!"

इसपर जमाल उछल पड़ा और चम्मच हवा में लहराकर बोला, "आहा, जभी तो मैं सोचूं कि आज पुलाव इतना लज़ीज़ क्यों है। सच्ची बात तो यह है, रहीम मियां, बुरा न मानना, पुलाव पकाने में ज़रीना का हाथ तुमसे और ज़्यादा साफ है।"

"अजी सच्ची बात का क्या बुरा मानना। मैं तो पहले ही ज़रीना की होशियारी कबूल करता हूं। देखिए न साहब, औरतें औरतें ही होती हैं, मर्द चाहे कितना भी अच्छा खाना पकाने वाला हो, फिर भी औरत का मुकाबला नहीं कर सकता, क्योंकि औरतों का तो छुटपन से काम ही यही होता है। अगर कोई लड़की ज़रा भी समझ रखती हो तो खाना पकाने में उस्ताद बन सकती है।"

पुलाव वाकई बहुत अच्छा बना था परन्तु उसके साथ ही जमाल ज़रीना की खुशामद भी करना चाहता था; इसलिए वह चहककर बोला, "रहीम मियां, मेरी राय तो यह है कि तुम ज़रीना को अपना उस्ताद मान लो और जो-जो चीज़ें ये बनाना जानती हैं वह इनसे सीख लो।"

इसपर रहीम ने ज़रीना की ओर देखते हुए कहा "देख लो बेटी, तुम्हारी उम्र मेरी उम्र का तीसरा हिस्सा होगी, फिर भी तुम मेरी उस्ताद मानी जा रही हो।"

यह सुनकर ज़रीना के होंठों पर हल्की-सी मुस्कान खेलने लगी, जिसे जमाल ने देख लिया।

उस रात के बाद जमाल अक्सर नदी को आते-जाते या रसोई-घर में घूमते-फिरते जब भी मौका पाता ज़रीना से बातें करने लगता। उसने ज़रीना को बताया कि वह उसकी जीवन-गाथा सुन चुका है, उसे उस बेचारी से गहरी हमदर्दी है।

ज़रीना ये बातें सुन लेती, लेकिन मुंह से कुछ जवाब न देती। उसके दिमाग में इस समस्या के बारे में कुछ सोचने की शक्ति नहीं रही थी। उसे यूं लगता था जैसे उसका दिमाग बिल्कुल सुन्न हो गया हो। वह कभी सपने में भी यह सोच नहीं सकती थी कि शहबाज़ लौटकर नहीं आएगा। लेकिन अब तो असलियत उसके सामने थी। वह सोचती कि अगर वह किसी कारण से आ नहीं सकता था तो कम से कम एक पत्र ही लिख देता। यही बात तो रहीम बाबा भी कहता था।

जमाल को होटल में टिके पच्चीस दिन हो चुके थे। अब वह वहां और ज्यादा समय तक नहीं रह सकता था। अब उसका लौटना ज़रूरी था। जहां तक ज़रीना का सम्बन्ध था, उसको बस इतनी ही सफलता प्राप्त हुई कि वह उसकी बातें चुपचाप सुन लेती, लेकिन उसे कभी ज़रीना के मुंह से कोई ऐसी बात सुनने का मौका नहीं मिला, जिससे कि वह उस लड़की के विचारों को जान सकता।

एक शाम जब ज़रीना नदी से लौट रही थी और सूर्य भी काफी नीचे पहुंच चुका था, तो उस समय जमाल उसे रास्ते में ही मिल गया। उसने हाथ में एक छोटी और पतली-सी छड़ी थाम रखी थी, जिसकी गोल मुट्ठी चांदी की बनी हुई थी।

सदा की तरह ज़रीना उसके सामने चुपचाप सिर झुकाए खड़ी थी। वह उससे आंखें भी तो मिलाती नहीं थी, वरना वह ज़रीना की आंखों में ही अपने लिए कोई भावना देखने की कोशिश करता।

कुछ देर तक ज़रीना अपनी आदत के अनुसार, चुपचाप खड़ी रही और जमाल इसलिए चुप रहा कि उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि वह क्या कहे।

आखिर जमाल को यह चुप्पी कुछ भौंड़ी-सी मालूम होने लगी

और बोलने का कोई विषय न पाकर उसने रुकते-रुकते केवल इतना कहा, "ज़रीना, मैं अब वापस जा रहा हूं।"

यह सुनकर ज़रीना ने पलभर के लिए आंखें ऊपर उठाईं, जैसे पूछ रही हो कि कब, और फिर एकदम ही उसने सिर झुका लिया।

जमाल फिर बोला, "हो सकता है, मैं कल ही चला जाऊं, या ज़्यादा से ज़्यादा परसों सुबह जाऊंगा।"

ज़रीना के चेहरे का रंग कुछ ज़रूर बदला, लेकिन उसने अपना मौन जारी रखा। तब जमाल ने हाथ से इशारा करते हुए कहा, "आओ ज़रीना, थोड़ा घूम आएं। मुझे तुमसे कुछ बातें भी करनी हैं।"

यह कहकर जमाल एक ओर को बढ़ा। चार कदम जाकर उसने घूमकर देखा तो ज़रीना अपने स्थान पर ही खड़ी थी। उसने फिर छड़ी से इशारा करते हुए कहा, "आओ न ज़रीना!"

अब ज़रीना कल वाले खिलौने की तरह चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल दी। जमाल ने धीमी आवाज़ में उसे समझाना शुरू किया, "रहीम की तरह मुझे भी तुमसे बड़ी हमदर्दी है। यह देखकर मुझे बड़ा दुःख और परेशानी होती है कि तुम्हें शहबाज़ ने धोखा दिया। तुम्हें मां-बाप के घर से निकालकर यहां ला फेंका। अब तुम घर लौटकर जाओ तो भी कुछ फायदा नहीं, क्योंकि तुम्हारे मां-बाप की जो बदनामी हो चुकी है वह तो धुल नहीं सकती; हां तुम्हारे वापस जाने पर और ज़्यादा शोर मच जाएगा और जो आग धीमी पड़ चुकी है वह फिर जल उठेगी। तुम्हारे मां-बाप भी तुम्हारी जान ले लेंगे। अब उनके या अपने भाइयों के घर तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं। रही शाहबाज़ की बात, तो मैं समझता हूं कि उसका इन्तज़ार करना ही बेकार, क्योंकि जो आदमी आठ दिन में वापस लौटने का वादा कर गया हो और वह महीनों तक न पहुंचे तो तुम खुद ही सोचो कि ऐसे आदमी की बेवफाई और उसके दिल के खोट में किसको शक हो सकता है। और कुछ

नहीं तो वह एक खत ही डाल देता !"

अब वे दोनों बिल्कुल सुनसान जगह पर पहुंच चुके थे। जमाल ने वहां रुकते हुए ज़रीना के चेहरे की जांच की, और फिर बोला, "लेकिन यह भी हो सकता है कि तुम्हारे बाप या भाइयों ने मौका पाकर उसे मार ही डाला हो।"

यह बात खुद ज़रीना ने भी कई बार सोची थी, लेकिन अब वही बात दूसरे आदमी के मुंह से सुनकर उसके दिल को धक्का लगा और वह फूट-फूटकर रोने लगी।

जमाल उचककर घास पर बैठ गया और उसने ज़रीना का हाथ थामकर धीरे से नीचे को खींचते हुए कहा, "आओ, तुम भी बैठ जाओ। मैंने यह बात तुम्हारा दिल दुखाने के लिए नहीं कही थी। इसका मतलब तो केवल यह है कि तुम शहबाज़ की आस छोड़ दो। उसपर जो भी बीती हो; लेकिन अब वह वापस नहीं आ सकता और न तुम किसी तरह उसकी मदद कर सकती हो।"

ज़रीना की आंखों से आंसू बहे जा रहे थे। जमाल ने जेब से रूमाल निकालकर उसकी आंखें और चेहरा पोंछा और फिर उसका मुंह चूम लिया।

फिर उसने कई और इधर-उधर की बातें कीं और कुछ देर बाद ज़रीना का सिर उसके कंधे पर था।

सूर्य डूब चुका था। चांद की फीकी चांदनी फैली हुई थी। झाड़ी की ओट में जमाल ने कांपती हुई आवाज़ में पूछा, "लाओ, अपना कोट बिछा दूं, ताकि तुम्हारी पीठ पर कंकड़ वगैरह न चुभें।"

कुछ देर और गुज़र गई। एकाएक जमाल को कुछ खटका-सा सुनाई दिया। एकदम नज़र उठाकर देखा तो उसके सामने रहीम मियां खड़े थे।

उसे देखते ही ज़रीना ने अपने कपड़े संभाले और लड़खड़ाती हुई भाग निकली। रास्ते में भागते-भागते उसने अपने बिखरे और उलझे हुए बालों को ठीक किया और फिर होटल की ओर दौड़ी।

१०

रात के धुंधलके में रहीम मियां और जमाल एक-दूसरे की ओर चुपचाप देख रहे थे। फिर जमाल धीरे-से उठा, उसने अपनी पतलून को ठीक किया और फिर कोट उठाकर उससे तिनके झाड़े और जब वह ज़मीन से अपनी पतली छड़ी उठाने को झुका तो रहीम बोला, "साहब, आपने यह अच्छा नहीं किया।"

जमाल ने धुंधलके में रहीम के चेहरे की भावनाएं पढ़ने की कोशिश करते हुए कहा, "लेकिन इसमें बुराई ही क्या है ?"

"तो क्या आप इसमें कोई बुरी बात समझते ही नहीं ?"

"ज़रीना को इस बात पर कोई एतराज़ नहीं था तो फिर तुमको इसपर क्या एतराज़ हो सकता है ! आखिर ज़रीना बालिग है।"

"बेशक वह बालिग है, लेकिन वह अभी अपना भला-बुरा नहीं समझती !"

"वह नहीं समझती तो और कौन समझता है ? क्या तुम समझते हो ?"

"हां, मैं समझता हूं। इसलिए कि वह मेरी बेटी की तरह है।"

"अगर वह बेटी की तरह है तो इसका मतलब यह है कि वह यहां तुम्हारे पास बैठी रहे और अपनी जवानी और ख़ूबसूरती बर-बाद करती रहे !"

"साहब बहादुर, अगर शहबाज़ यहां कहीं आ निकला तो आपको ख़ूबसूरती और जवानी की ये सब बातें पलभर में भूल जाएंगी !" रहीम की आवाज़ में तीव्रता आ गई थी। और उसने फिर अपनी बात जारी रखी, "बाबू साहब, मैं कह चुका हूं कि वह मेरी बेटी की तरह है। उसका बुरा-भला देखना मेरा काम है।"

जमाल ने महसूस किया कि गुस्से के मारे रहीम की आवाज़ कांप रही थी। उसने अब धीमे स्वर में कहा, "लेकिन रहीम मियां, तुम मुझे बिल्कुल गलत समझे हो। मैं पूछता हूं कि अगर तुम वाकई ज़रीना के बाप की तरह हो तो बताओ उसे कभी शादी नहीं करने

दोगे, या कभी उसे घर में न बसने दोगे ?"

यह सुनकर रहीम ठिठककर रह गया। कुछ देर तो वह बोल ही नहीं पाया। क्योंकि जमाल के इन शब्दों से तो इस समस्या का रुख ही पलट गया। उसने यह भी महसूस किया कि उसे ज़रूरत से कुछ जल्दी ही गुस्सा आ गया। उसने अपने स्वर को काबू में रखते हुए धीरे से कहा, "आपका मतलब अगर मैं गलत नहीं समझता तो यही है कि आप···"

जमाल ने उसकी बात काटते हुए कहा, "रहीम, तुम तो जानते ही हो कि ज़रीना से जितनी हमदर्दी तुम्हें है उतनी ही मुझे भी है। मैंने अक्सर उसे समझाने-बुझाने की कोशिश की, लेकिन फिर भी मैंने महसूस किया कि ज़रीना को इतना समझा देना ही काफी नहीं था कि वह शहबाज़ के आने की उम्मीद छोड़ दे, बल्कि उसे तो सहारे की ज़रूरत है। भला हवाई बातों से उसके मन को शान्ति कैसे मिल सकती है ?"

रहीम को जमाल की बातों में सच्चाई का एहसास हुआ। उसने कुछ सोचकर कहा, "अगर आपके यह ख्यालात हैं तो वाकई खुशी की बात है, लेकिन मैं इतना ज़रूर कहूंगा कि आपको ज़रा सब्र से काम लेना चाहिए था। आखिर इतनी भी क्या जल्दी थी। अभी तो आपको अपने-आपपर काबू रखना चाहिए था !"

जमाल उसका इशारा समझ गया। वह दो कदम बढ़कर रहीम के निकट पहुंच गया और बोझिल स्वर में बोला, "हां रहीम मियां, अपनी इस गलती को मैं मानता हूं। अब खुद मैं अपने किए पर पछता रहा हूं ! काश ! मैंने कुछ सब्र से काम लिया होता। रहीम मियां ! मेरी बात का यकीन करो कि इतने दिन से मैं यहां रह रहा हूं, लेकिन आज तक मैंने ज़रीना को कभी उंगली से छुआ तक नहीं, लेकिन अब मैं और ज्यादा नहीं रह सकता था। कल ही चले जाने का इरादा है। यही बातें ज़रीना से भी होती रहीं, फिर एकाएक हम दोनों बेचैन हो गए, दिल पर काबू न रहा और फिर वह हरकत हो गई जो नहीं होनी चाहिए थी।"

जमाल ने ये बातें इतनी नम्रता से कहीं कि रहीम का दिल पिघल गया। अब उसे उचित शब्द नहीं मिल रहे थे जो वह कह सके। जमाल फिर बोल उठा, "रहीम मियां ! भैया ! तुम्हें मेरी बात पर यकीन नहीं है ? सच कहता हूं कि मेरी नीयत खराब नहीं थी। नीयत खराब न होते हुए भी मुझसे यह भूल हो गई बल्कि यह कहना चाहिए कि हम दोनों से यह भूल हो गई; क्योंकि अगर ज़रीना ही सम्हल गई होती तो यहां तक नौबत न पहुंचती।"

रहीम को जमाल की यह बात भी ठीक मालूम हुई। इसमें तो कोई भी शक ही नहीं था कि ताली दोनों हाथों से बजती है। अगर ज़रीना···

यहां तक पहुंचकर रहीम का दिमाग भन्ना गया। अभी तक तो वह केवल जमाल को ही इस घटना का ज़िम्मेदार समझता था, लेकिन अब तो उसके मन में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि ज़रीना इस काम के लिए तैयार ही कैसे हुई।

जमाल उसके सामने एक मुजरिम की तरह खड़ा था। इसलिए रहीम ने अपने मन में कहा कि अभी इस किस्म की बात सोचने का समय नहीं है। अभी तो उसे ठण्डे दिल से बातचीत जारी रखनी चाहिए। चुनांचे उसने जमाल को साथ लेकर वापस जाने के लिए कदम उठाते हुए कहा, "लेकिन साहब ! आपको ज़रीना से शादी करने से पहले अपने मां-बाप से भी तो मशविरा करना होगा।"

"हां, वह तो ज़रूरी है।"

"अगर वह इतनी गरीब, अनपढ़ और घर से भागी हुई लड़की के साथ आपकी शादी करने को तैयार न हुए तो ?"

"तुम बात तो ठीक कह रहे हो और यह भी मैं मानता हूं कि हमारे रास्ते में ज़रूर रुकावटें आएंगी; लेकिन फिर भी मेरे विचार में ये रुकावटें इतनी बड़ी नहीं हैं कि मैं उनपर काबू न पा सकूं। खासकर मेरे वालिद साहब बड़े ही खुले दिल के आदमी हैं; मैं किसी ढंग से उन्हें ज़रूर समझा-बुझा लूंगा।"

रहीम ने महसूस किया कि जमाल की नीयत खराब नहीं थी,

वरना वह ज़रूर बढ़-बढ़कर बातें बनाता और उसे विश्वास दिलाने की कोशिश करता कि सारा काम चुटकियों में हो जाएगा। तब उसने जमाल की पीठ पर हाथ रखकर कहा, "साहब ! आप पढ़े-लिखे और समझदार हैं। मुझे आपपर पूरा भरोसा है। मैं तो आपको बार-बार यही ताकीद करूंगा कि आपने जो इस गरीब लड़की का हाथ थामा है तो छोड़िएगा नहीं।

"नहीं, रहीम मियां। ऐसा कभी नहीं हो सकता। अब तुमसे क्या छिपाना, मुझे सचमुच ही ज़रीना से सच्चा प्यार हो गया। सुबह जाने से पहले मैं अपना पूरा पता लिखकर ज़रीना को दे जाऊंगा। अगर वह बहुत ही परेशान हो तो बेशक उसी पते पर मेरे पास चली आए। मेरा अपना प्रोग्राम तो यही है कि मैं घर जाकर बातचीत से अपने रिश्तेदारों को राज़ी कर लूं। तुम मुझे उसी पते पर चिट्ठी लिखकर ज़रीना का हाल बताते रहना। जहां तक मुझे कामयाबी हासिल होगी उसके बारे में मैं बाकायदा लिखता रहूंगा।"

रहीम को इस बात का तो कुछ विश्वास हो गया था कि जमाल वाकई ज़रीना से प्यार करता है और उससे शादी करना चाहता है; लेकिन उसके मन में यह उलझन भी तो थी कि अगर उसके मां-बाप न माने तो फिर ज़रीना का क्या बनेगा ?

शायद जमाल ने उसके मन की बात भांप ली, वह बोला, "और अगर मेरी बात किसीने न मानी तो भी मैं ज़रीना का साथ नहीं छोड़ूंगा। मैं उसे अपना करके ही रहूंगा। जोकि मुझे यकीन है कि मुझे ऐसा कदम उठाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, समझाने-बुझाने से वे ज़रूर मान जाएंगे।"

इसी सम्बन्ध में कुछ और बातें भी हुईं। यहां तक कि वे होटल के निकट जा पहुंचे। रहीम तो सीधा बावर्चीखाने की ओर चला गया और जमाल ज़ीने पर चढ़ने लगा।

रात-भर ज़रीना के दिमाग में अजीब-अजीब विचार आते रहे।

उसके दिमाग में धुन्ध ही धुन्ध थी। पिछले कुछ महीनों से वह कुछ भी समझ न पा रही थी। वह बहुत दूर तक सोच भी नहीं सकती थी। उसका कुछ सोचने को मन ही नहीं चाहता था। वह बस यही चाहती थी कि कोई और उसकी जगह सोच-विचार करे। उस रात उसकी नींद भी अजीब-सी रही। ज़रा ऊंघती तो उसे अपने सामने एक महासागर फैला नज़र आता। कभी वह सपने में भाग रही होती, जैसे कोई उसका पीछा कर रहा हो। कभी वह गिनती गिनने लगती। उसे मालूम नहीं था कि वह क्या गिन रही थी। वह तो बस गिने जा रही थी। गिनती गिनते-गिनते वह थक जाती, लेकिन फिर भी वह महसूस करती कि जाने कौन उसे गिनती जारी रखने पर मजबूर कर रहा है; वह रुक नहीं सकती।

एकाएक उसे कुछ शोर सुनाई दिया। उसकी नींद टूटी तो उसने आंखें खोल दीं। देखा तो हर ओर दिन का प्रकाश फैला हुआ था, और कोई बाहर खड़ा उसकी कोठरी का दरवाज़ा खटखटा रहा है।

उसने पांव से टटोलकर जूता पहना। आगे बढ़कर दरवाज़ा खोला तो सामने जमाल दिखाई दिया। जमाल उसके भरे-भरे कन्धों पर हाथ रखकर उल्टे कदमों पलंग तक ले आया। यहां तक कि वह पलंग पर बैठ गई। जमाल ने बड़ी बेतकल्लुफी से उसके चेहरे को दो-तीन बार चूमा और धीरे से बोला, "अच्छा ज़रीना, मैं जा रहा हूं। तुम बेफिक्र रहो। हम फिर मिलेंगे, और सदा के लिए मिलेंगे।"

फिर उसने तह किया हुआ एक कागज़ उसकी ओर बढ़ाया और कहा, "यह लो, इसपर मेरा पता लिखा है। रहीम मियां इसी पते पर चिट्ठी भेजा करेंगे। तुम अपना हाल लिख दिया करना।"

ज़रीना ने वह कागज़ अपनी मुट्ठी में भींच लिया। जाते-जाते जमाल ने एक बार फिर उसके होंठों को चूमा और कहा, "मैंने कुछ रुपये तुम्हारे लिए रहीम मियां के पास जमा कर दिए हैं। मैंने सोचा शायद तुम मुझसे यह रुपया लेने से इन्कार कर दो। जब यह रुपया खत्म हो जाए तो तुम मुझे चिट्ठी लिखकर और रुपया मंगवा सकती

हो।" यह कहकर जमाल ने उसके गाल पर हल्की-सी थपकी दी और कोठरी से बाहर निकल गया।

अब की ज़रीना शहबाज़ की तरह जमाल को विदा करने के लिए नहीं गई। रहीम चिनार के उस झुरमुट तक गया, जहां से पहले वह शहबाज़ को विदा कर चुका था। एक कश्मीरी छोकरा जमाल का बिस्तर सिर पर उठाए था और उसकी हल्की-सी अटैची हाथ में पकड़े था। वे दोनों उस झुरमुट के नीचे रुक गए। परन्तु वह कुली अपना बोझ सिरपर उठाए धीरे-धीरे आगे बढ़ता चला गया। रहीम ने जमाल के चेहरे को ज़रा गौर से देखते हुए कहा, "जमाल साहब ! आप जाते ही अपने पहुंचने की खबर भेजिएगा।"

"यही होगा रहीम मियां !"

रहीम ने अपनी आंखों में उमड़ते हुए आंसुओं को रोकते हुए कहा, "अब मैं और क्या कहूं सिवाय इसके कि ज़रीना को भूल नहीं जाइएगा। वह बड़ी दुखी है। आप पढ़े-लिखे भले खानदान के लड़के हैं। उम्मीद है कि आप इस बात का ख्याल रखेंगे।"

जमाल ने प्यार से अपना हाथ बढ़ाकर रहीम के कन्धे पर रख दिया और बोला, "इसके बारे में न कुछ कहने की ज़रूरत है और न फिकर करने की। अल्लाह ने चाहा तो बहुत जल्द सब काम ठीक हो जाएगा।"

इस किस्म की दो-चार बातें और हुईं और फिर जमाल अपने रास्ते पर चल दिया। तीन महीने पहले इसी जगह रहीम ने शहबाज़ को विदा किया था। उनकी शक्ल-सूरत में कितना फर्क था। कहां शहबाज़, जिसका ऊंचा डीलडौल था। वह हज़ारों में एक था। लेकिन जमाल शहरी युवक था। दाढ़ी-मूंछ सफा। नये फैशन की कमीज़ और उसपर साहब लोगों की तरह पतलून चढ़ाए हुए; सिर पर हैट।

रहीम कुछ देर खड़ा इस परदेशी पंछी को भी जाते हुए देखता रहा, फिर वह सुस्त कदमों से लौट पड़ा। जब छोटी कोठरी के पास से गुज़रा तो उसने देखा कि कोठरी का दरवाज़ा अधखुला-सा था।

ज़रीना अपनी खाट पर लेटी थी। उसने आंखों पर एक बाज़ू रख रखा था। शायद उसे पिछली शाम की घटना पर झेंप महसूस हो रही थी। रहीम चुपचाप आगे बढ़ गया।

दिन गुज़रते गए। यहां तक कि दस दिन बाद भी जमाल का कोई पता नहीं आया। इससे रहीम को बेचैनी-सी महसूस होने लगी। लेकिन ज़रीना शान्त दिखाई देती थी। कोई यह कह नहीं सकता था कि उसका मन भी शान्त था या नहीं। वह चुप रहती, अलग-अलग रहती, लेकिन उसने कभी जमाल के बारे में कोई शिकायत नहीं की। रहीम को इस बात पर बड़ा अचम्भा हुआ कि अब ज़रीना शहबाज़ के सम्बन्ध में एक शब्द तक सुनने को तैयार नहीं थी। उसने साफ शब्दों में रहीम से यह बात कह दी कि वह उसे शहबाज़ के बारे में कुछ न कहे। मालूम होता था कि अब शहबाज़ के लिए उसके मन का दरवाज़ा सदा के लिए बन्द हो चुका था। वह किसी ढंग से भी उसका ज़िक्र सुनना पसन्द नहीं करती थी।

ज़रीना के इस व्यवहार से रहीम ने समझा कि अब शायद ज़रीना के मन के सिंहासन पर जमाल विराजमान हो चुका है। अब यहां शहबाज़ के लिए कोई जगह नहीं रही थी। वह सोचता कि इसमें बेचारी ज़रीना का दोष भी क्या! शहबाज़ ने उसको जीवन का सबसे बड़ा धोखा दिया था। उसने ज़रीना को यह समझाने की कोशिश भी की, हो सकता है कि शहबाज़ के साथ कोई दुर्घटना घटी हो। लेकिन उसे ज़रीना फिर भी बेपरवाह ही नज़र आई, जैसे शहबाज़ की ज़िन्दगी या मौत से उसे कोई दिलचस्पी न हो। रहीम की समझ में यह बात नहीं आती थी कि एकाएक ज़रीना का रुख पलट कैसे गया। फिर उसने सोचा कि इन बातों पर विचार करना बेकार है। हो सकता है कि जमाल के साथ उसने अपने बाकी जीवन के बारे में कुछ समझौता कर लिया हो।

इससे भी बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि ज़रीना ने कभी जमाल के बारे में भी नहीं पूछा, कभी यह जानने की कोशिश नहीं

की कि उसका पता आया या नहीं। वह काठ की पुतली की तरह अपने काम में जुटी रहती — उदास-सी, चुप-चुप-सी, खोई-खोई-सी।

दसवें दिन रहीम ने खुद ही जमाल के नाम एक खत लिखवाकर भिजवा दिया। पन्द्रह दिन तक उत्तर नहीं आया तो फिर एक और खत लिखा। इस तरह डेढ़ माह गुज़र गया। तब किसीने रहीम को बताया कि रजिस्ट्री से खत भेजो। जब रजिस्ट्री खत भेजा गया तो लिफाफा लौट आया। डाकिये ने बताया कि इस पते पर इस नाम का कोई आदमी नहीं है।

रहीम ये सब बातें ज़रीना को बताता रहा। ज़रीना पत्थर की मूर्ति की तरह उसकी बातें सुन लेती, लेकिन कभी कोई बात न कहती।

रहीम दिन-रात इसी उधेड़-बुन में रहता कि अब वह क्या करे या क्या न करे। दो माह गुज़र चुके थे, लेकिन अभी तक जमाल का कुछ पता नहीं था। एकाएक रहीम को एक दिन ऐसा लगा कि ज़रीना के बच्चा होने वाला है। पहले तो अपने मन को ढाढस दी कि शायद उसे धोखा हुआ हो, लेकिन थोड़े दिनों बाद उसे पता चल गया कि उसका ख्याल बिल्कुल सही था।

अब तो रहीम का दिमाग दहकती हुई भट्ठी की तरह हो गया। गहरे सोच-विचार के बाद उसने तय किया कि वह खुद जाकर जमाल से मिलेगा और उसे अपना वायदा पूरा करने पर मजबूर करेगा।

आखिर एक रोज़ वह दो जोड़े कपड़ों की पोटली बगल में दबाकर गाड़ी पर सवार हो गया। पता अलीगढ़ शहर का था। वहां पहुंचकर उसे मालूम हुआ कि मुहल्ले का नाम, सड़क का नाम, मकान का नम्बर सब कुछ गलत था। उसने सोचा कि अगर यह सब कुछ झूठ है तो इसका यही मतलब हो सकता है कि जमाल भी फर्जी नाम होगा।

हरेक कोशिश के बावजूद, जब रहीम को जमाल का कुछ सुराग नहीं मिला तो वह निराश होकर वापस चला आया। आते ही

उसने ज़रीना का सिर अपने सीने से लगा लिया और उसकी दोनों आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली।

लेकिन ज़रीना की आंखें सूखी पड़ी थीं। यूं लगता था जैसे वह होने वाली बात को पहले से ही जानती थी। उसने न सिसकी भरी, न मुंह से कुछ कहा। रहीम उसकी यह हालत देखकरऔर भी बेचैन हो उठा। वह एकाएक उसका सिर अपने सीने से हटाकर वहां से चल दिया। वह सीधा उन क्यारियों के निकट पहुंचा जहां सब्ज़ियां लगी थीं। हाथ में खुरपा लेकर वह पांव के बल बैठ गया। काफी देर तक वह खुरपा हाथ में लिए सुन्न-सा बैठा रहा। तब ज़ोर से खुरपा नरम ज़मीन में मारा।

कुछ दिनों बाद, एक रोज़ चार बजे के करीब ज़रीना नदी की ओर चली। उस समय आकाश पर गहरे बादल छाए हुए थे। घटा यूं झुकी हुई थी जैसे कोई लम्बी झड़ी लगने को हो।

ज़रीना बनफ्शे के फूलों में से होती हुई आगे बढ़ती गई। नदी के किनारे पहुंचकर उसने देखा कि उस समय तक सब औरतें अपने-अपने घरों को जा चुकी थीं और अब सारी जगह सुनसान पड़ी थी। पानी में किनारे-किनारे उभरी हुई छोटी-छोटी चट्टानों पर साबुन के निशान पड गए थे, वहीं औरतें कपड़े धोया करती थीं।

ज़रीना ने धीरे से अपने कपड़े उतारने शुरू किए। वह कपड़े उतार रही थी लेकिन उसका ध्यान किसी और तरफ लगा था। उसे यू लग रहा था जैसे उसका दिल तूफान में घिरा हो। उसे मर्द जात बिल्कुल अजीब-सी लग रही थी। कैसे लोग होते थे यह, एक आंधी की तरह वे औरत के जीवन में आते हैं और फिर बगूले की तरह अपने साथ उसे भी उड़ाए फिरते हैं और अन्त में बिना किसी कारण के जहां कहीं जी चाहता है वहीं अपने दिल की रानी को धरती पर पटककर आगे बढ़ जाते हैं, और फिर कभी लौटकर वापस नहीं आते।

ज़रीना ने देखा कि उसके पेट के साथ उसका सीना भी पहले से कहीं ज़्यादा फूल गया था और सीने के दोनों तरफ नीले रंग की नसें

उभर आई थीं। उसे यह महसूस करके बड़ा अजीब-सा लगा कि उसके पेट में एक बच्चा पल रहा था।

इसी खोए-खोए अन्दाज़ में नहाकर उसने बदन पोंछा और कपड़े पहन लिए। तब वह नदी के किनारे-किनारे चलती हुई उस स्थान पर पहुंची जहां से वह पानी झरने के रूप में नीचे गिरता था। कितनी तेज़ी थी उस पानी में। स्वतन्त्र, निडर, तीव्र था उसका पानी। उसके गिरने का शोर दूर तक पहुंचता था। ऊपर से नीचे तक उस झरने का दृश्य कितना सुहावना और मनमोहक था।

वे मर्द जो उसके जीवन में आए थे बिल्कुल इस आबशार की भांति थे। ज़रीना सोच रही थी कि वे दोनों उसके गले से लगकर भी उसे छोड़कर चल दिए थे लेकिन प्रश्न तो यह था कि अगर वह इस झरने को गले से लगा ले तो क्या यह भी उसका साथ छोड़ देगा ?

कहीं दूर से बादल की गरज सुनाई दी। और फिर वह गरज झरने के शोर के साथ घुल-मिल गई।

११

हर हफ्ते रहीम होटल के लिए कुछ ज़रूरी सामान खरीदने शहर जाया करता था। उस रोज़ सब्ज़ी मण्डी से ज़रूरी सब्ज़ियां खरीद-कर होटल को भिजवा देता और खुद बाज़ार को चल देता। मिर्चें, अमचूर, पापड़, हल्दी, नमक, चीनी और इसी किस्म की छोटी-मोटी चीज़ों की लम्बी सूची तैयार होती और वह अपने जाने-पहचाने दुकानदारों के साथ गपशप भी करता और अपना काम भी पूरा कर लेता।

एक तरह से सौदा खरीदने का दिन रहीम के लिए तफरीह का दिन होता था, लेकिन अब की जो वह बाज़ार गया तो सौदा

खरीदने की बजाय अपने एक दोस्त अब्दुल मजीद के पास चला गया। अब्दुल मजीद अपनी ज़िन्दगी में कई पापड़ बेल चुका था। उसने जो-जो काम किए उनकी सूची तो बहुत लम्बी है, मसलन वह कार्निवाल में काम करता रहा है, बूट पालिश बनाकर बेचता रहा, थियेट्रिकल कम्पनी में रहा, यहां तक कि वह खुद ड्रामे भी लिखता रहा। उसकी ज़्यादा मशहूरी अभिनेता होने के कारण हुई। वह कैरेक्टर-ऐक्टर कहलाता था, बहुरूप बदलने में उसे कमाल हासिल था। खासकर डायलाग बोलने में वह बेजोड़ था। अब उसने हाथ से खींचने वाले कई ठेले रख रखे थे। ठेले खींचने वाले मज़दूर उसके ठेले ले जाते और उसे अपनी कमाई में से हर रोज़ कुछ हिस्सा दे देते, जिसके सहारे उसकी ज़िन्दगी की गाड़ी चल रही थी। बीवी मर चुकी थी, केवल एक लड़की थी, जिसकी शादी के बाद वह फुर्सत पा चुका था। वैसे भी जीवन में उसे फुर्सत ही थी। वह खुद लम्बा-चौड़ा, पचपन वर्ष का, भारी-भरकम आदमी था और फिर ठेले वालों का सरदार। खुद ठेला नहीं खींचता था, लेकिन ठेले वाले उसके आगे सिर झुकाते थे। केवल इसलिए नहीं कि वह उनका मालिक था, बल्कि इसलिए कि वाकई उसकी शखसियत बड़ी रोब-दाब वाली थी।

अब्दुल मजीद के पास समय की कोई कमी नहीं थी। अब उसका ध्यान अधिकतर संन्यासियों और दरवेशों की तरफ रहता और वह खुद भी सूफियों की तरह बातें करता। वह दरवेशों-फकीरों की खुद सेवा भी करता था और फिर उनके साथ धार्मिक समस्याओं पर काफी लम्बी बहसें भी करता। वैसे आम मिलने वालों से वह दुनिया-भर के विषयों पर बातचीत किया करता था। वह पढ़ा-लिखा तो मामूली था, परन्तु बम्बई और कलकत्ते जैसे शहरों में रहने के कारण कई बातें पढ़े-लिखे लोगों से सीख गया था। वह जो पांच-छः दर्जे तक उर्दू पढ़ गया था उसका भी उसने पूरा-पूरा फायदा उठाया, यानी उसने कई ड्रामे लिखे। ड्रामों के प्लाट तो पुराने ही होते थे, जैसे प्रह्लाद भक्त, राजा हरिश्चन्द्र, खवाबेहस्ती

आदि, लेकिन उसमें अब्दुल मजीद उर्दू-फारसी के भारी-भरकम शब्द भर दिया करता था। उन ड्रामों का महत्त्व तो इतना ही था कि जब तक वह खुद थियेटर-कम्पनी में रहा, तब तक उन ड्रामों को कम्पनियां खेलती रहीं, लेकिन जब वह सब कुछ छोड़-छाड़कर चला आया तो किसी कम्पनी ने उसका लिखा हुआ नाटक नहीं खेला।

रहीम भी अपना सामान ठेलों पर लदवाया करता था। इस तरह उसकी अब्दुल मजीद से मुलाकात हुई, लेकिन धीरे-धीरे यह मुलाकात अच्छी-खासी दोस्ती का रूप धारण कर गई। रहीम की नज़र में अब्दुल मजीद का बहुत ऊंचा दर्जा था। अब तक बातें ऐसी ही करता था जैसे स्टेज पर डायलाग बोल रहा हो। अनपढ़ और सीधे-सादे लोगों पर उसके इस अन्दाज़ का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता। रहीम तो हर मुसीबत में उसीका सहारा लेता था। जब कभी जीवन में कोई समस्या आ खड़ी होती तो रहीम सीधा उसके पास पहुंचता क्योंकि उसकी बातों से उसे सदा ही तसल्ली मिलती थी।

एक ऐसे ही दिन सब्ज़ी मण्डी से फुर्सत पाकर, वह बाज़ार जाने की बजाय, अब्दुल मजीद के ठिकाने की ओर चल दिया। आढ़तियों की दुकानें शहर के सिरे पर थीं और अब्दुल मजीद का मकान और दफ्तर भी वहीं पर था। कहने को दफ्तर था, लेकिन वहां एक तख्त और एक लोहे की कुर्सी के सिवाय कुछ नहीं था। तख्त पर एक पुरानी दरी बिछी रहती। कमरे की चारों दीवारें खाली थीं। केवल एक शीशे वाला चौखटा लटक रहा था जिसके अन्दर अरबी भाषा का, चिकने कागज़ पर रंगदार अक्षरों में एक शब्द 'या अल्लाह' छपा था।

जब रहीम दरवाज़े में दाखिल हुआ तो उस समय अब्दुल मजीद तख्त पर चौकड़ी मारे बैठा था। मोटे बदन पर गंजी फंसाए और कमर से तहबन्द बांधे वह हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। जब रहीम को देखा तो उसकी बाछें खिल गईं। रहीम ने अपना दाहिना हाथ दाढ़ी

तक लाकर कहा, "असलाम अलैकुम ।"

"वा अलैकुम सलाम ।"

अब्दुल मजीद ने सलाम का जवाब देकर कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा, "आओ भाई, रहीम मियां। बैठो, लो हुक्का गुड़-गुड़ाओ, अभी ताज़ा किया है।"

रहीम टांग पर टांग रखकर कुर्सी पर बैठ गया और फिर उसने हुक्के की डंडी दातों में दाब ली और जल्दी-जल्दी तीन-चार गहरे कश लेकर धुआं कुछ मुंह से और कुछ नाक से छोड़ा।

अब्दुल मजीद ने अपनी घनी मूंछों को फड़काते हुए कहा, "कहो रहीम मियां ! आज तुम्हारे चेहरे पर साढ़े छः बजे दिखाई देते हैं। वजह क्या है ?"

अब्दुल मजीद ने तो यह बात हंसी में कही, लेकिन रहीम ने बड़े गहरे और गम्भीर लहजे में उत्तर दिया, "भई, साढ़े छः न बजें चेहरे पर तो और क्या हो। एक औरत के कारण नाक में दम है।"

वैसे तो अब्दुल मजीद संसार के हर विषय पर बोल सकता था; लेकिन औरतों की बात चले तो उसके मुंह से फुलझड़ियां छूटने लगतीं। फौरन सीने पर हाथ रखकर कहा, "क्या बात कही है ज़ालिम तूने। हर घर में औरत का होना ज़रूरी है। और औरत ही ज्यादातर मुसीबतों का घर है।"

रहीम कुछ देर तक चुपचाप अपने दोस्त की ओर देखता रहा। शायद उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह बात कैसे शुरू करे। आखिर काफी सोच-विचार के बाद बोला, "भई, वैसे तो मैंने भी घाट-घाट का पानी पिया है। विलायत तक की सैर कर आया हूं लेकिन फिर भी जो तजुर्बा इस दुनिया और यहां के लोगों का तुमने हासिल किया है वह मेरे पास नहीं है। तुम आलिम-फाज़िल[1] हो। तुमने ज़रूर औरत के मन को भी बड़ी गहरी नज़र से देखा होगा, इसीलिए तुम्हीं मुझे कुछ राय दो। मेरा मतलब है कि मुझे कुछ समझाओ कि आखिर यह सब कुछ है क्या ?"

---

१. विद्वान

"बर्खुरदार ! तुमने यह तो बताया ही नहीं कि तुम्हारे साथ क्या बीती, फिर बताओ कि मैं इसके बारे में क्या राय दे सकता हूं। बाकी रही औरत की बात, तो भई, यह समझ लो कि औरत बहुत ही अजीब चीज़ है। उसकी अपनी ही दुनिया है, उसको कोई मर्द देख नहीं सकता। मेरा तजुर्बा तो यही कहता है कि औरत को वही मर्द समझ सकता है जो उसे समझने की कोशिश नहीं करता। जो मर्द औरतों की हरकतों, उनके दिमाग, और उनकी बातों को समझने की कोशिश करते हैं वे महामूर्ख होते हैं।—यह है मेरे तजुर्बे का निचोड़। हां, अब कहो कि तुमपर इस बुढ़ापे में औरत जात के कारण क्या मुसीबत आन पड़ी है ?"

"मैंने तुम्हें बताया ही था कि कुछ माह पहले शहबाज़ नाम का एक नौजवान पठान एक लड़की को लेकर मेरे पास आया था। तुमने तो शहबाज़ को मेरे साथ कई बार देखा भी होगा ?"

"हां, हां ! देखा है। मुझे उसकी शक्ल अच्छी तरह याद है। तुमने मुझे यह भी बताया था कि वह उस लड़की से शादी करना चाहता है और चूंकि उन दोनों के मां-बाप इस बात पर राज़ी नहीं थे इसलिए वे अपने घर से भाग निकले थे।"

"कुछ दिनों के बाद शहबाज़ लड़की को मेरे पास छोड़कर चला गया। मैंने राय दी थी कि तुम लोग शादी करके पूरी आजादी से रहो। उसका ख्याल था कि अब तक उन दोनों के मां-बाप अपनी राय बदल चुके होंगे, या उनकी राय न भी बदली होगी, तो वह अपनी मां से कुछ रुपया और ज़ेवर लाएगा और अपनी ज़रीना को दुल्हन की तरह सजाकर उससे ब्याह रचाएगा। वह आठ दिन में वापस आने का वायदा करके चला गया।"

"और फिर लौटकर नहीं आया, क्यों ? है न यही बात ?" अब्दुल मजीद ने अपने तख्त पर फुदकते हुए पूछा।

रहीम ने ज़रा आश्चर्य में पड़कर उत्तर दिया, "तुम ठीक कहते हो ! वह फिर लौटकर नहीं आया।"

इससे अब्दुल मजीद को बड़ी खुशी हुई और उसने ऊंचे स्वर

में ललकारकर कहा, "वाकई मर्द का बच्चा था शहबाज़ भी।"

अब रहीम की हैरानी और बढ़ी, लेकिन इससे पहले कि वह कुछ पूछता, अब्दुल मजीद ने अपने-आप ही कहना शुरू किया, "अरे वह भी कोई मर्द है जो माशूक लौंडिया को उसके घर से न भगा लाए। ऐसा मर्द भी किस काम का जो लौंडिया को छोड़-कर गायब न हो जाए।"

रहीम को यह बात बड़ी ही अजीब लगी। आज मर्द को उसके सामने एक नये ही रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था। उसका गला सूख-सा गया। उसने खांसकर उखड़े-उखड़े लहजे में फिर कहना शुरू किया, "हां, तो वह तुम्हारा मर्द का बच्चा तो सचमुच ही लौटकर नहीं आया, लेकिन मैं इतना जानता हूं कि उनका आपस में गहरा प्यार था। जब शहबाज़ दो माह तक नहीं लौटा तो उन दिनों एक और नौजवान मुसाफिर मेरे यहां आकर ठहरा और उस लड़की पर डोरे डालने लगा।"

अब अब्दुल मजीद ने अपनी घनी मूंछों को हथेली से संवारते और ऊपर उठाते हुए कहा, "थोड़े दिनों में उस लड़की ने नये आशिक को वह मोती दे डाला जो उसने तुम्हारे ख्याल में शहबाज़ को भी नहीं दिया था।"

रहीम परेशान हो उठा। आखिर अब्दुल मजीद कैसे सारी बात को पहले ही से भांप जाता था। तब उसने मरी हुई आवाज़ में कहा, "लेकिन भैया! जब तक वे दोनों एकसाथ रहे, शहबाज़ ने हमेशा अपना बिस्तर अलग कमरे में लगाया। वह वहीं सोता था और लड़की अलग कोठरी में सोती थी।"

"अरे भई, इसका यह मतलब तो नहीं कि रात को किसी वक्त भी वह उसके पास न जाता हो। अगर तुम्हारा ही ख्याल ठीक है तो भी मुझे कोई एतराज़ नहीं, क्योंकि जो कोई हाथ बढ़ाए वही उसकी कलाई पकड़ भी सकता है।"

"लेकिन यार! कितनी अजीब बात है कि जिस आशिक के नाम की ज़रीना माला जपा करती थी, बाद में उसका नाम तक

सुनना पसन्द नहीं करती। केवल यही नहीं, दूसरे प्रेमी से उसे···"

रहीम बात कहते-कहते झिझक गया। अब्दुल मजीद ने हाथ उठाकर कहा, "कोई बात नहीं, मैं सारा मामला समझ गया हूं।'

"लेकिन भई, क्या यह हैरानी की बात नहीं? यह सब कुछ देखकर मेरा तो दिमाग ही चकरा गया।"

" 'औरत! तेरा दूसरा नाम कमज़ोरी है।' जानते हो यह बात दुनिया के बड़े नाटककार शेक्सपियर ने कही थी।"

"उस नाटककार को डालो भाड़ में। कोई सीधी बात कहो, जो मेरी समझ में आए।"

अब्दुल मजीद ने गर्दन आगे बढ़ाकर कहा, "औरत जब देने लगती है तो अपना सब कुछ दे डालती है। वही औरत जब वापस लेती है तो सब कुछ वापस ले लेती है। पहले उस लड़की ने अपना सब कुछ शहबाज़ के हवाले किया। जब उसने धोखा खाया तो अपना सब कुछ वापस ले लिया। तब दूसरे की बारी आई तो सब कुछ उसके हवाले किया। मेरे ख्याल में यह दूसरा भी मर्द का बच्चा ही निकला होगा।"

"हां, वह मर्द का बच्चा भी लौटकर नहीं आया।"

अब अब्दुल मजीद ने हुक्के की डंडी घुमाकर अपने दांतों में दाब ली और बोला, "हां, यह सब कुछ तो मैं पहले ही समझ गया था। अब आगे कहो।"

रहीम ने सब कुछ कह सुनाया तो अब्दुल मजीद बोला, "यार, तुम क्यों घबराए फिरते हो? तुम न लेने में न देने में, तीन में न तेरह में। तुम्हारी पोज़ीशन तो बिल्कुल साफ है।"

इस तरह अब्दुल मजीद ने आध घण्टे तक अपनी भरपूर आवाज़ में रहीम को एक लम्बा-चौड़ा भाषण पिलाया, जिससे रहीम को काफी तसल्ली हो गई और उसका मन भी हलका हो गया।

बाज़ार से सौदा लेकर जब वह गधा हांकता हुआ वापस लौटा तो होटल से कुछ फासले पर एकाएक वह ठिठककर रुक गया।

उसके सामने चिनार के पेड़ों का वही पुराना झुण्ड था और

उस झुण्ड में शहबाज़ खड़ा था।

पलभर रुककर वह आगे बढ़ा। जब शहबाज़ के बराबर पहुंचा तो शहबाज़ ने कहा, "असलाम अलेकुम।"

रहीम ने मुंह से कुछ नहीं कहा। हाथ के इशारे से सलाम का जवाब देता हुआ वह आगे बढ़ गया। स्टोर-रूम के आगे पहुंचकर उसने सारा सामान कोठरी के अन्दर रखा और गधे को एक ओर हांक दिया। फिर वह बावर्चीखाने में घुस गया। उसने अपनी चाय के लिए पानी की केतली दहकती अंगीठी पर रखी तो उसे अपने पीछे फिर शहबाज़ की आवाज़ सुनाई दी, "ज़रीना कहां है?"

१२

एक दोपहर जबकि सूरज अपनी पूरी आन-बान से प्रकाश में चमक रहा था, एकाएक पहाड़ों की ओट से काली घटा उठी और जिस तरह कोई फकीर चांदी की चमकती हुई अठन्नी को अपनी मैली-कुचैली गुदड़ी के अंधेरे में डाल देता है उसी तरह इस गहरी काली घटा ने सूरज को अपने मैले आंचल में छिपा लिया।

रहीम, जो होटल के सामने ही चारपाई डाले लेटा था, उठकर बैठ गया। आजकल होटल के आधे से ज़्यादा कमरे भरे हुए थे, इसलिए उनकी देखभाल करने में रहीम खासा थक जाता था। इस थकान का कारण केवल काम की ज़्यादती ही नहीं, बल्कि उसका बुढ़ापा भी था।

उसकी बकरानुमा दाढ़ी के सारे बाल बर्फ की तरह सफेद हो चुके थे। उनमें से केवल कुछ ज़रा पीले-पीले नज़र आते थे। खोपड़ी अंडे की तरह चिकनी धूप में चमका करती थी। सिर्फ गुद्दी से लेकर दोनों कानों तक सफेद बालों की एक झालर-सी दिखाई देती थी। उसका कुबड़ा शरीर और भी ज़्यादा झुक गया था।

एक आंख में मोतियाबिन्द उतर आया था। उसके बाज़ू और टांगें बेपत्तों की सूखी टहनियों की तरह दिखाई देते थे। मुंह में कोई-कोई दांत अब भी खूंटे की तरह गड़ा था। सदा की तरह अब भी वह दिन ढलने पर थोड़ी-सी शराब पी लेता था, लेकिन शामी कबाब का टुकड़ा मुंह में रखने से पहले वह उसे अंगुलियों में अच्छी तरह मसल लेता। अब उसकी आयु अठ्हत्तर साल के लगभग थी।

घास के टिड्डे की तरह रहीम ने चारपाई पर बैठे-बैठे आकाश पर नज़र दौड़ाई। उसकी धुंधली आंखों को आकाश के इस सिरे से उस सिरे तक फैली हुई घटा कुछ और भी गहरे रंग की नज़र आई। बहुत ही नर्म, बारीक और हल्की-सी फुहार ने उसके चेहरे पर ठंड की एक लहर दौड़ा दी। वह टांगें बढ़ाकर चारपाई से उतरा ही था कि उसे एक मुसाफिर आता दिखाई दिया। वह होटल के बिल्कुल निकट पहुंच चुका था। रहीम के देखते-देखते उसने अपनी मोटी छड़ी ज़मीन में गाड़ दी। छड़ी की मुट्ठी की जगह दो छोटे-छोटे पंखे-से नज़र आते थे, जिन्हें फैलाकर उस मुसाफिर ने उसपर अपने चतड़ टिका दिए। उसके पीछे जो कुली सामान उठाए आ रहा था उसने सूटकेस और बिस्तर ज़रा आगे बढ़कर बरामदे में रख दिया।

रहीम दो कदम मुसाफिर की ओर बढ़ा और मुस्कराकर बोला, "सलाम हुज़ूर!"

रहीम की आवाज़ अब भी भरपूर थी। उस आवाज़ में अब भी एक विशेष प्रकार की नरमी थी। लेकिन उस मुसाफिर ने उसकी ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। वह चुपचाप सिर उठाए होटल की इमारत का जायज़ा ले रहा था। उसकी उम्र पचास के लगभग होगी, कद ऊंचा न ठिगना, बदन इकहरा, रंग साफ, आंखों में हल्की-सी चमक, होंठों पर मुस्कराहट। वह बहुत बढ़िया सूट पहने हुए था। ऐसा सूट लोग इतनी बड़ी उम्र में नहीं पहनते। इससे पता चलता था कि वह रंगीन-मिज़ाज आदमी था। वह होटल को बड़ी दिलचस्पी से देख रहा था। चुनांचे जब कुली ने उसके

पास पहुंचकर अपनी मज़दूरी मांगी तो भी उसने बिना कुछ जवाब दिए चांदी के दो रुपये निकाले और उसके हाथ पर रख दिए। कुली सलाम करके चला गया।

रहीम दोनों हाथ पीठ पर बांधे छोटे कदम उठाता हुआ और आगे बढ़ा और फिर पहले से भी ऊंचे स्वर में प्रश्न किया, "क्या हुज़ूर को कमरा चाहिए?"

मुसाफिर ने अब की चौंककर उसकी ओर देखा और फिर हंसकर बोला, "हां, मुझे एक कमरा चाहिए, लेकिन नौ नम्बर कमरा।"

यह सुनकर रहीम को कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि ऐसे मुसाफिर अक्सर आया करते थे जिन्हें कोई खास कमरा ही पसन्द होता था। मगर उनके मनपसन्द का कमरा खाली न होता तो वह दूसरे कमरे में टिक जाते, लेकिन जब अपने वाला कमरा खाली हो जाता तो फौरन उसपर कब्ज़ा जमा लेते। लेकिन इस समय तो नौ नम्बर कमरा खाली था। रहीम ने ज़ोर से आवाज़ लगाई, "ओ हातो, कोई है। यह सामान उठाकर ऊपर नौ नम्बर में पहुंचाओ।"

एक मोटा-ताज़ा कश्मीरी लड़का आगे बढ़ा। उसने सामान उठाकर जल्दी-जल्दी ज़ीना चढ़ना शुरू किया तो रहीम ने हाथ से इशारा करते हुए कहा, "चलिए हुज़ूर, आप वाला कमरा खाली है।"

मुसाफिर ने अपनी मोटी छड़ी को एक हल्का-सा झटका देकर ज़मीन से निकाला और ज़ीने की ओर बढ़ा। जब वह नौ नम्बर कमरे में पहुंचा तो उसने अपनी छड़ी खूंटी से लटकाकर कमरे के चारों ओर नज़र डाली। हां, वही पुराना कमरा था। उसकी दीवारों पर वही पुरानी तस्वीरें थीं। इन पच्चीस वर्षों में बूढ़ी मल्का विक्टोरिया अपनी तस्वीर में और ज़्यादा बूढ़ी दिखाई नहीं देती थी, लेकिन तस्वीर का शीशा टूट चुका था और तस्वीर खासी मैली हो गई थी। शीशे का जो टुकड़ा बच रहा उसपर मक्खियों ने अपनी गन्दगी फैला दी थी। दमयन्ती की रंगीन तस्वीर के रंग काफी फीके पड़ चुके थे, लेकिन इन सबकी याद मुसाफिर के दिमाग में फीकी नहीं पड़ी थी। उसने पलटकर जल्दी-जल्दी पांच-

छः लम्बे-लम्बे डग भरे और बड़ी खिड़की की सिटकनी खोलकर उसके पट बाहर की ओर धकेल दिए।

खिड़की के एकदम खुल जाने से हवा का नमदार झोंका अन्दर आया और एक हल्की-सी चपत की तरह मुसाफिर के मुंह पर लगा। उसने खुश होकर हल्का-सा कहकहा लगाया। फीकी-फीकी पहाड़ियों पर बादलों की घटा की परछाईं पड़ रही थी। गहरी-गहरी घटाओं के कारण ही हरी-भरी पहाड़ियां फीकी-फीकी-सी दिखाई दे रही थीं, और फिर एकदम मुसाफिर की नज़र उस आबशार पर पड़ी जो उसी पुराने अन्दाज़ और तीव्रता से घाटी में गिर रहा था। इतनी दूर से भी उसके गिरने का हल्का-सा शोर सुनाई दे रहा था।

मुसाफिर टकटकी बांधे कई क्षणों तक झरने की ओर देखता रहा, फिर वह रहीम की आवाज़ सुनकर चौंका। उसने घूमकर रहीम की ओर देखा और पूछा, "क्या कहा तुमने ?"

"हुज़ूर, मैं कह रहा था कि आपके लिए चाय या कॉफी और नाश्ता भिजवाऊं ?"

"हां, हां, ज़रूर, लेकिन कॉफी; क्योंकि तुम्हारी कॉफी जो भी एक बार पी ले, उम्र-भर उसे भुला नहीं सकता !"

यह सुनकर रहीम के होंठों पर हल्की-सी मुस्कराहट उत्पन्न हुई। पहले अपनी तारीफ सुनकर उसकी बांछें खिल जाती थीं, लेकिन अब ऐसी कोई बात नहीं थी। हां, दिखाने को वह ज़रूर मुस्करा देता। उसने ज़रा-सा अपने सिर को नीचे की ओर झुकाया, "बहुत अच्छा हुज़ूर !"

"खाने के लिए चीज़ सैंडविच, चीज़ है न···मेरा मतलब है पनीर।"

"सब कुछ तैयार है।"

यह जवाब देकर रहीम लौटा। जब वह दरवाज़े के करीब पहुंचा तो पीछे से आवाज़ आई, "तुम्हारा नाम रहीम है न ?"

"जी हां !" यह कहते-कहते रहीम ने घूमकर मुसाफिर की

ओर देखा।

मुसाफिर ने दो कदम आगे बढ़कर पूछा, "तुमने मुझे तो नहीं पहचाना ?"

इतने में दूर से बादल के गरजने की आवाज़ सुनाई दी। जब गरजना समाप्त हुआ तो रहीम ने धीमे स्वर में कहा, "जी, मैंने नहीं पहचाना। माफ कीजिएगा, अब मैं बूढ़ा हो गया हूं। मेरी याददाश्त उतनी अच्छी नहीं रही। कभी-कभी तो कल की बात आज भूल जाता हूं।"

मुसाफिर ने एक हल्का-सा कहकहा लगाया और बोला, "कोई बात नहीं। रहीम, मैं बहुत लम्बे अरसे के बाद यहां आया हूं। शायद पच्चीस वर्ष से भी ऊपर हो चुके हैं। तुम्हें याद होगा यहां एक लड़की थी !"

रहीम ने माथे पर बल डालकर अपने कमज़ोर हाथ से अपनी चिकनी खोपड़ी को सहलाया। कुछ देर तक उसकी यही हालत रही, फिर बोला, "आपका मतलब रूबी से है ? वह बच्ची मेरे अंग्रेज़ मालिक मिस्टर लारेंस की बेटी थी।"

"नहीं, नहीं। छोटी बच्ची नहीं, मैं जवान लड़की का ज़िक्र कर रहा हूं।"

"तो फिर वह रूबी की मां डारिस होगी। जितनी वह सूरत की अच्छी थी, उतनी मन की भी।"

"नहीं, नहीं, रहीम ! मैं डारिस को नहीं जानता। अच्छा, खैर, जाने दो।"

इतने में दरवाज़े के आगे से एक खूबसूरत जोड़ा गुज़रा। लड़की बड़ी हसीन थी। अपनी सुर्ख कमीज़, सलवार और सिर पर गुलाबी ओढ़नी के कारण वह बिल्कुल बीरबहूटी-सी दिख रही थी। उसके साथ उसका पति था, जो सरहद का रहने वाला दिखाई देता था। उसने चूड़ीदार पायजामा, काली अचकन और सिर पर कुल्लेदार लुंगी बांध रखी थी। वे दोनों एक-दूसरे के हाथ में हाथ दिए एक-दूसरे की ओर को सिमटे हुए और एक-दूसरे की बलाएं

लेते हुए आगे बढ़ गए। मुसाफिर ने पूछा, "ये कौन हैं ?"

"यह नया विवाहित जोड़ा है। यहां हनीमून मनाने आए हैं।"

मुसाफिर ने अबरू हिलाकर और चेहरे पर बनावटी निराशा उत्पन्न करते हुए कहा, "अरे भई, इन दोनों को तो एक-दूसरे से ही फुर्सत नहीं होगी, किसी और की तरफ ये क्या ध्यान देंगे। मगर यह तो कहो कि कोई ऐसे मुसाफिर भी ठहरे हैं जिनसे दो बातें करके हमारा मन बहल सके।"

रहीम ने अपने माथे पर उंगली बजाते हुए धीमे स्वर में कहा, "यहां एक नवाब साहब निचले कमरे में ठहरे हुए हैं। बड़े शरीफ, बड़े शायस्ता[1] लेकिन बड़े ही हंसमुख हैं। आप उनसे मिलेंगे तो खुश होंगे और आपका वक्त भी अच्छी तरह से कट जाएगा।"

यह कहकर रहीम नाश्ता लेने के लिए कमरे से बाहर निकल गया और मुसाफिर एक बार फिर बड़ी खिड़की के सामने जा खड़ा हुआ। वह दूर झरने को टकटकी बांधे देख रहा था। उसके मन में भी एक वैसा ही झरना उबल पड़ा था। वह अपने विचारों में खोया काफी देर तक खड़ा रहा। यहां तक कि उसका नाश्ता पास मेज़ पर लग गया।

रात होने पर मुसाफिर खाना खाने के लिए निचली मंज़िल पर बड़े हॉल में चला गया। हॉल के एक कोने में एक अधेड़ उम्र का ऐंग्लो-इण्डियन छोटे-से प्यानो पर सीधी-सादी धुन बजा रहा था। सात-आठ मुसाफिर दूर-दूर मेज़ों पर बैठे खाना खा रहे थे या खाने का इन्तज़ार कर रहे थे। वह नया विवाहित जोड़ा भी अलग-थलग बैठा था। खाना उनके आगे रखा था, लेकिन वे बातें किए जा रहे थे और बेचारा खाना इस इन्तज़ार में था कि उनकी बातें खत्म हों तो वह अपनी मंज़िल तक पहुंचे।

मुसाफिर नम्बर नौ अपनी मेज़ के आगे बैठा। रहीम ने आकर खाने का आर्डर लिया। जब वह चला गया तो करीब

---

१. सभ्य

वाली मेज़ के साथ लगी कुर्सी पर एक भारी-भरकम आदमी आकर बैठ गया। वह छः फुट से भी ऊंचा था। उसका शरीर पहाड़ की तरह था, पेट आगे को उभरा हुआ, कल्ले पर कल्ला चढ़ा हुआ। हाथ ऐसे मोटे जैसे उसने उनपर बाक्सिग लड़ने के दस्ताने पहन रखे हों। उसकी मूंछें इतनी बड़ी और घनी थीं कि इनसे छोटे-मोटे आदमी की पूरी दाढ़ी बन सकती थी। सिर के बाल चार अंगुल पीछे हट चुके थे। माथा लोटे के उभरे हुए पेंदे की तरह था। उसकी आयु चवालीस के लगभग होगी और उसका वज़न साढ़े तीन मन के लगभग होगा। यानी वह सचमुच चलता-फिरता पहाड़ नज़र आता था।

मुसाफिर नम्बर नौ ने उस भारी-भरकम आदमी के हुलिये से अन्दाज़ा लगाया कि ज़रूर वही नवाब साहब हैं। उससे रहा न गया। चुनांचे गर्दन ज़रा आगे को बढ़ाकर पूछा, "माफ कीजिएगा! क्या आप ही नवाब साहब हैं?"

उस भारी-भरकम आदमी ने अपना कद्दू-सा सिर इनकी ओर घुमाया और भारी आवाज़ में उत्तर दिया, "जी हां, मुझे ही लोग नवाब साहब कहते हैं। लेकिन इससे यह न समझिएगा कि मैं सच-मुच किसी रियासत का नवाब हूं, बल्कि लोग कुछ मज़ाक से मुझे नवाब साहब कहते हैं। मैं भी अब अपने-आपको नवाब ही कहने लगा हूं। फरमाइए, मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूं?"

"माफ फर्माइएगा, मैंने बिना इजाज़त आपसे बात शुरू कर दी। मुझे इस्माइल कहते हैं।"

यह सुनकर नवाब ने अपना हाथ आगे बढ़ाया और जब मियां इस्माइल ने उनसे हाथ मिलाया तो उन्हें पता चला कि नवाब साहब का बदन यूं ही फूला हुआ नहीं था बल्कि उनके हाथ में शेर के पंजे की ताकत भी थी। नवाब सचमुच ही हंसोड़ थे। जब वे हंसते तो उनके फूले हुए गाल और लाल हो जाते, और मज़बूत दांत घनी मूंछों तले अपनी चमक दिखाने लगते। नवाब साहब ने कहा, "यहीं तशरीफ ले आइए न; एक ही मेज़ पर खाना खाए

और कुछ गपशप भी चलती रहे।"

"शुक्रिया।" यह कहकर मि० इस्माइल नवाब साहब की मेज़ से लगी हुई कुर्सी पर जा बैठे। तब नवाब साहब ने अपने कोट की ऊपर वाली जेब में से दो बढ़िया किस्म के सिगार निकाले और एक मिस्टर इस्माइल की ओर बढ़ाते हुए बोले, "लीजिए! शौक फर्माइए।"

.एक बार फिर शुक्रिया कहकर मि० इस्माइल ने सिगार स्वीकार कर लिया। जब उसे घुमा-फिराकर सूंघा तो उन्हें पता चला कि सिगार बहुत बढ़िया तम्बाकू का बना था।

दोनों ने सिगार जला लिए और फिर नवाब साहव ने धुएं का खासा बड़ा बादल-सा छोड़ते हुए पूछा, "लेकिन इस्माइल साहब, आपको मेरे बारे में कहां से और कैसे पता चला?"

"मुझे आपके बारे में रहीम ने ही बताया था। आज ही मैं यहां पहुंचा तो मैंने रहीम से पूछा कि इन दिनों होटल में कोई ऐसे साहब भी ठहरे हैं जिनसे बातचीत करके अपना वक्त अच्छी तरह कट सके। तो उसने आपका नाम लिया और बहुत तारीफ भी की। अब जो मैंने आपको देखा तो अन्दाज़ा लगाया कि आप ज़रूर वही नवाब साहब हैं। मुझसे रहा न गया इसीलिए मैंने गुस्ताखी की।"

"अजी, गुस्ताखी की क्या बात है। आपने तो मुझपर एहसान किया, जो मुझसे बातचीत शुरू कर दी। मैं तो खुद ही महसूस कर रहा था:

खूब गुज़रगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो।"

इसपर दोनों ने ज़ोरदार कहकहा लगाया। इतने में खाना आ गया। वे दोनों खाने के साथ गप्पें भी हांकते रहे। खाना समाप्त हो चुका तो घूमने चल दिए। बारिश हो जाने के बाद अब आकाश में तारे झिलमिलाने लगे थे।

पहली मुलाकात के बाद उन दोनों की मित्रता बढ़ती ही गई। दोनों अकेले थे, वहां तफरीह को आए थे। कोई तीसरा व्यक्ति वहां ऐसा नहीं था जिससे वे बातचीत कर सकें, चुनांचे उनका दिन-

रात का साथ रहने लगा। सुबह का नाश्ता, दोपहर का खाना, शाम की चाय और रात का खाना वे एकसाथ ही खाते। दोपहर के खाने के बाद वे कुछ देर आराम करने के लिए अपने-अपने कमरे में चले जाते, या रात को सोने के समय वे एक-दूसरे से अलग होते। देखने वालों को उनकी जोड़ी अजीब-सी लगती। कहां तो नवाब साहब सवा छः फुट ऊंचा मांस और हड्डी का चलता-फिरता पहाड़, कहां मि० इस्माइल जिनका सिर मुश्किल से नवाब साहब की बगल तक पहुंचता था और फिर इतने हल्के-फुल्के कि जो कहीं नवाब साहब फूंक मार दें तो ये उड़कर दूसरी पहाड़ी पर गिरें।

इस तरह पांच-छः दिन हंसी-खुशी में गुज़र गए।

एक रोज़ जबकि वे दोनों बरामदे में बैठे चाय पी रहे थे तो उनके सामने रहीम अपना गधा हांकते हुए आया और उसने आवाज़ देकर कहा, "अबे हातो! ज़रा लाना तो गधे का टाट।"

इस्माइल ने हंसते हुए पूछा, "कहो रहीम मियां, इस वक्त कहां की तैयारियां हो रही हैं?"

"अजी, यहीं शहर तक जा रहा हूं। कोई चीज़ खत्म हो जाए तो ये लौंडे-लपाड़े पहले से नहीं बताते। आज क्या देखता हूं कि गर्म मसाला, चीनी और हल्दी बिल्कुल ही खत्म है। बस, यही सामान लेने जा रहा हूं।"

नवाब साहब ने हल्का-सा कहकहा लगाते हुए कहा, "पर रहीम मियां, तुम गधा तो अपने साथ ऐसे ले जा रहे हो जैसे दो-तीन मन बोझा लादकर लाओगे?"

"अजी, गधा मेरी सवारी के काम तो आता ही है। अब इन पहाड़ियों की चढ़ाई मुझसे चढ़ी नहीं जाती। डेढ़ पसली का हल्का-फुलका आदमी हूं, यह गधा मुझे आसानी से पीठ पर उठाकर ले जाता है।"

इसी तरह उन तीनों की इधर-उधर की बातें चल निकलीं।

एकाएक रहीम को पुरानी बात याद आई तो वह मियां

इस्माइल की ओर देखते हुए बोला, "जिस रोज़ आप आए थे उस रोज़ आप किसी लड़की के बारे में पूछ रहे थे। आपका मतलब ज़रीना से तो नहीं था ?"

"हां, हां, वही पठान लड़की। खुद मुझे उसका नाम याद नहीं था। ज़रीना ! आह ! इस नाम के साथ कितनी हसीन सूरत उभरती है दिमाग में।"

रहीम ने सिर दायें-बायें हिलाकर उदास लहजे में कहा, "वाकई वह बड़ी हसीन थी। मैंने उसे बेटी की तरह चाहा, लेकिन उसकी किस्मत ही फूटी थी, क्योंकि जिसके साथ वह यहां आई थी वह उसे छोड़कर चला गया। आठ रोज़ में लौटने का वायदा किया, लेकिन महीनों तक नहीं आया। उसकी गैरहाज़िरी में जमाल नाम के एक साहब यहां रुके। उन्होंने उसपर डोरे डाले। ज़रीना भी उस नाउम्मीदी की हालत में सीधे रास्ते से भटक गई। जमाल भी वापस आने का वायदा करके चला गया, लेकिन लौटकर नहीं आया। जो पता वह दे गया था उसपर कई खत लिखे गए, लेकिन कोई जवाब नहीं मिला। फिर मैं खुद उसकी तलाश में निकला, उसके दिए हुए पते पर उसे ढूंढ़ा, लेकिन सब बेकार !"

मि० इस्माइल ने बड़ा आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा, "लेकिन वह पहला जवान जो उसे लाया था, लौटकर क्यों नहीं आया ?"

रहीम ने धुंधली आंखों से आकाश की ओर देखते हुए हाथ उठाए। बोला, "वह सब अल्लाह की मर्ज़ी की बात है। शहबाज़ यहां से गया तो ज़रीना के रिश्तेदारों के चंगुल में फंस गया। उन्होंने उसे अपने यहां कैद कर रखा। बड़ी मुश्किल से वह छूटा। उसने अपने मां-बाप को उस शादी पर राज़ी किया। फिर पंचायत बैठी। कुछ बड़े-बूढ़ों के समझाने पर यही फैसला हुआ कि उन दोनों की शादी कर दी जाए। लेकिन शहबाज़ कई महीनों के बाद यहां पहुंचा तो मैदान साफ हो चुका था।"

मियां इस्माइल ने चाय का दूसरा प्याला बनाते हुए पूछा, "और वह लड़की ?"

रहीम ने कहा, "वह लड़की तो तूफानों से टकराती रही। पहला तूफान शहबाज़ था, जिसने उसे छोड़ दिया। दूसरा तूफान जमाल था, जिसने उसे धोखा दिया और तीसरा तूफान वह सामने का आबशार था। अपने पेट में जमाल का बच्चा लिए वह उस झरने से जा लिपटी। झरने ने उसका साथ नहीं छोड़ा। दूसरे दिन जब उसकी लाश मिली तो पुलिस ने मुझसे काफी पूछताछ की, लेकिन असली मामले के सबूत मिल जाने पर उनकी तसल्ली हो गई।"

अब तक रहीम गधे पर टाट बांध चुका था। एक खाली बोरा भी उसने गधे की पीठ पर तह करके रख दिया और फिर उसकी पीठ पर बैठकर बोला, "रख, रख। चल बेटा!"

वे दोनों बरामदे में बैठे हुए रहीम को पगडंडी पर गायब होते देखते रहे। इतने में ऊपर वाली खिड़की खुली। उस कमरे में नया विवाहित जोड़ा आपस में चुहलें करता दिखाई दिया तो इस्माइल ने चटखारा लेकर कहा, "नवाब साहब! जवानी अजीब चीज़ होती है।"

नवाब साहब धीमे से हंसे और फिर अपने साथी की रान पर हाथ मारकर बोले, "आइए इस्माइल साहब, ज़रा घूमने चलें!"

वे दोनों सुलगते हुए सिगार दांतों में दाबे वहां से सैर को चल दिए।

इस्माइल ने चारों ओर एक अजीब-सी नज़र डालते हुए कहा, "नवाब साहब, ये सब बातें यूं लगती हैं जैसे अभी कल ही बीती हों। वही बनफ्शे के फूल, सरू के ये हसीन पेड़, वे हरी-भरी झाड़ियां, ऐसा ही सुन्दर समय, यही वातावरण और फिर इसमें वह हसीन ज़रीना। लुसलुस करती हुई, जवानी के नशे में मदहोश···। वह मुझे बहुत चाहती थी।"

चलते-चलते नवाब साहब एकदम रुक गए। फिर मुस्कराकर बोले, "यह क्या कह रहे हैं आप?"

"ठीक ही कह रहा हूं। बेशक मेरा नाम इस्माइल है लेकिन उन दिनों मैंने अपना नाम जमाल ही बताया था। वजह यह कि एक

तो मैं अपना असली नाम छिपाना चाहता था, दूसरे जमाल रोमांटिक नाम है। आपको इतना ताज्जुब क्यों हो रहा है। आप समझते होंगे कि मेरे जैसा मामूली शक्ल और शख्सियत वाला शख्स इस बात का दावा कसे कर सकता है कि ऐसी हसीन लड़की मुझसे मुहब्बत करने लगे। लेकिन यह है हकीकत। मैंने न केवल अपना नाम गलत बताया बल्कि अपना पता भी गलत बताया। शायद मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था। लेकिन उस वक्त मैंने समझा कि अब इस लड़की की ज़िन्दगी यूं ही गुज़रेगी। जब उसका चाहने वाला उसे छोड़ गया तो वह फिर केवल चौराहे की हांड़ी बनकर रह जाएगी। मैंने सोचा कि जब उसकी किस्मत में यही कुछ लिखा है तो इस मीठे पुलाव में मैं भी हाथ मार लूं तो क्या बुरा है।"

नवाब साहब फिर रुक गए। उन्होंने इस्माइल की ठुड्डी के नीचे हाथ रखकर उसका चेहरा ज़रा-सा ऊपर को उठाया और एक बड़ा ही ज़ोरदार कहकहा लगाया और बोले, "वाकई इस्माइल साहब, हम कायल हो गए आपकी होशियारी देखकर।"

इसपर इस्माइल साहब ने दोस्ताना अन्दाज़ में अपना हाथ नवाब साहब के हाथ में दे दिया और खुलकर उन्हें वे सारे हथकंडे बताए जो उन्होंने ज़रीना पर बर्ते थे और फिर आखिर में मियां इस्माइल ने नाक के नथुनों में से धुआं उड़ाते हुए कहा, "मज़े की बात यह है कि रहीम ने भी तो मुझे नहीं पहचाना। ठीक ही है। पच्चीस साल से ऊपर बीत चुके, मेरी भी शक्ल बदल गई···"

"लेकिन दिल की उमंगों और तरंगों में कोई तबदीली नहीं आई।"

इस तरह चहकते-बोलते दोनों मित्र झरने के पास जा पहुंचे। वही वर्षों से अपने अन्दाज़ में शोर मचाते हुए नीचे गिरने वाला झरना, घाटी की गहराई में नदी के पानी से टकराता हुआ झरने का पानी, उस टकराव से उठते हुए छींटे जो नन्हे-नन्हे बादलों के रूप में नज़र आ रहे थे! मियां इस्माइल ने नीचे घाटी की ओर झांकते हुए कहा, "नवाब साहब, इस आबशार को देखता हूं तो मुझे अपने

दिल की कैफियत नज़र आ जाती है। सचमुच इश्क का तूफान इस आबशार से कम थोड़ा होता है।"

यह कहते-कहते मियां इस्माइल आगे बढ़कर आबशार की ओर झुकी हुई एक चट्टान पर खड़े हो गए। उस समय उनकी आंखों में भय की हल्की-सी झलक थी और जब वे बोले तो उनकी आवाज़ हल्की-सी कांप रही थी, "नवाब साहब! ज़रीना ने यहीं से छलांग लगाई होगी। उफ! यहां से गिरना कितनी भयंकर बात है! पहले तो वह नीचे वाली उस चट्टान से टकराई होगी, फिर उससे, फिर उससे···यहां तक कि नीचे पहुंचते-पहुंचते पिलपिले टमाटर की तरह हो गई होगी। उफ बेचारी ज़रीना!"

एकाएक मियां इस्माइल को डर-सा लगा कि कहीं ऐसा न हो कि वे फिसलकर इसमें जा पड़ें। इस ख्याल से वे एकदम पीछे को घमे लेकिन अचानक एक दीवार-सी उनकी आंखों के सामने आ गई। यह नवाब साहब का चौड़ा-चकला सीना था। मियां इस्माइल ने सिर ऊपर उठाकर नवाब साहब की ओर देखा। उनका तरबूज़ के बराबर सिर, चमकता हुआ माथा, घनी भवें, आंखों के नीचे थैले से, ऊंची नाक के फड़फड़ाते हुए नथुने, घनी लम्बी मूंछें, भरे-भरे अधखुले होंठ—उनमें से झलकते हुए उनके मज़बूत दांत, तने हुए घूंसे की तरह उनकी आगे को बढ़ी हुई ठुड्डी और उसके नीचे उनका पहाड़ का सा जिस्म, चौड़ी दीवार का सा सीना।

मि० इस्माइल को न जाने क्यों अपने मन की गहराइयों में डर-सा महसूस हुआ। दिमाग में धुआं-धुआं-सा भरने लगा, उन्होंने मरी हुई आवाज़ में कहा, "नवाब साहब! मेरे ख्याल में अब हमें वापस चलना चाहिए। न जाने क्यों मुझे ऊंघ-सी आ रही है। जी चाहता है पलंग पर पहुंचकर गहरी नींद सो जाऊं।"

उनकी बात के उत्तर में नवाब साहब चुपचाप एक कदम आगे बढ़े। मियां इस्माइल एकदम लड़खड़ा गए और झरने में गिरते-गिरते बचे। उन्होंने चिल्लाकर कहा, "नवाब साहब, यह क्या मज़ाक है। आपको मालूम होना चाहिए कि अगर आप ज़रा-सा भी आगे बढ़े

तो मैं नीचे गिर पड़ूंगा और मेरी हड्डी-पसली का पता नहीं चलेगा।"

उस समय नवाब साहब की ऊंची नाक के नथुनों में से सिगार का धुआं निकल रहा था और भरपूर होंठों पर एक मुस्कान खेल रही थी। "यह मुझे मालूम है, लेकिन जमाल साहब, आपको नहीं मालूम कि पच्चीस साल के लम्बे अरसे के बाद मियां रहीम मुझे भी नहीं पहचान सके।"

१३

इस घटना को घटे लगभग पच्चीस वर्ष हो चुके हैं। अब वहां कोई झरना नहीं बल्कि झरने वाली जगह पर अब केवल एक निशान बाकी है—उस पहाड़ के सीने पर गहरे घाव का निशान !

•

प्रतिध्वनि

३ जून, १९२३ की शाम को तूफान मेल तपती हुई पटरियों पर अन्धाधुन्ध गुजरात की ओर दौड़ा जा रहा था।

मुनीर अहमद इण्टर क्लास के डिब्बे में चुपचाप और निश्चेष्ट बैठा था। धूल, कोयले के कणों और लू से बचने के लिए उसने सामने की खिड़की का मोटा शीशा ऊपर चढ़ा दिया था। शीशे में से पीला आकाश, फैले हुए खेत और दरख्तों के झुण्ड घूमते हुए दिखाई दे रहे थे।

डिब्बे में बहुत कम लोग थे। कुछ लोग बातें कर रहे थे। अधिकांश धोती के पल्लू या किसी अखबार से पंखा झलते ऊंघ रहे थे। उनकी कनपटियों और ठुड्डियों पर पसीने की बूंदें झलक रही थीं।

मुनीर अहमद एक पतला-दुबला-सा नाटे कद का व्यक्ति था। उसके चेहरे की बनावट छुहारे के समान थी। आंखें छोटी और चमक से खाली। हाथ चहे के पंजों की तरह बिल्कुल हलके-फुलके, उंगलियां पतली-पतली। हाथों के पीछे की नसें उभरी हुईं। देखने में वह एक सरल स्वभाव और दुर्बल प्रकृति का आदमी लगता था। चेहरे से किसी प्रकार की तीव्र भावनाओं का प्रदर्शन नहीं होता था। ज़िन्दगी में उसे जो कुछ पेश आ चुका था, वह उससे अब एक तरह का समझौता कर चुका था।

सन् १९१२ में डाक्टरी पास करने के बाद उसने लाहौर में

प्रैक्टिस शुरू कर दी थी, लेकिन उसमें उसे ज़रा भी सफलता न मिली। इस व्यवसाय में आदमी के व्यक्तित्व और उसकी लच्छेदार बातों से ही लोग अधिक प्रभावित होते हैं। लेकिन मुनीर अहमद न केवल अपनी कला में कुछ कच्चा था बल्कि उसकी ज़बान पर भी ताला पड़ा हुआ था। रोगी को देखकर वह घबरा जाता था और रोगी उसकी घबराहट देखकर परेशान हो जाता था... वह रोगी की कलाई हाथ में लेकर इतने मूर्खतापूर्ण ढंग से आंखें झपकाता कि रोगी को विश्वास हो जाता कि डाक्टर को उसके रोग का पता नहीं चला। उसका व्यक्तित्व तो कुछ भी नहीं था। यह भी कैसी विचित्र बात है कि लोग मोटे-ताज़े डाक्टर को देखते हैं तो समझते हैं कि वह सचमुच योग्य है और यदि कहीं मुनीर अहमद जैसे व्यक्ति को देख पाएं तो यही समझते हैं कि यह डाक्टर तो आप ही मर रहा है, हमारा इलाज क्या करेगा ?

गांव में उसके बूढ़े माता-पिता रहते थे, जिन्होंने उम्रभर की कमाई उसकी शिक्षा पर खर्च कर दी थी और इसपर खुश थे। यद्यपि वे नकद रुपया बेटे की शिक्षा पर खर्च कर चुके थे, लेकिन उनकी कुछ पैतृक सम्पत्ति भी थी। कुछ ज़मीन थी, एक रहट था, कच्ची ईंटों का एक मकान था, फिर उनका लड़का डाक्टर बनकर रुपया भी कमा रहा था। यद्यपि मुनीर अहमद की प्रैक्टिस सौ रुपये माहवार से कभी आगे नहीं बढ़ती थी और लाहौर जैसे शहर में इतनी कम प्रैक्टिस कोई महत्त्व न रखती थी। लेकिन उसके माता-पिता को कोई शिकायत न थी। वह हर महीने एक दिन के लिए अपने गांव चला जाता। साठ-सत्तर रुपये अपने बापू के हाथ पर रख देता। उसकी मां उस दिन फूली न समाती। हंस-हंसकर पड़ोसियों से बातें करती। उसका बाप अपना रुपया लोहे की एक अलमारी में रखा करता था। मुनीर चाहता था कि कुल रकम बैंक में जमा रहे, लेकिन उसका बाप पुराने खयाल का आदमी था, इसलिए वह उसका दिल नहीं दुखाना चाहता था। गांव वाले इस बात से बिल्कुल बेखबर थे कि मुनीर अहमद साठ-सत्तर रुपये माहवार

घर वालों को लाकर देता है। जब कभी मुनीर अहमद गांव में आता तो कोट-पतलून पहने और टाई लगाए होता। उन दिनों हैट और पतलून कभी-कभार ही देखने में आते थे। इसलिए खेतों में काम करने वाले अपरिचित ग्रामीण उसे कोई बड़ा अफसर समझकर सलाम भी कर दिया करते थे।

मुनीर अहमद का खर्च बहुत कम था। आटा, घी, शक्कर और सत्तू आदि तो वह घर से ले जाता था। दूसरे खर्चों का जोड़ चालीस रुपये माहवार से अधिक न होता था। हां, कोट और पतलून वह ज़रूर पहनता था। उसका विचार था कि यदि वह अंग्रेज़ी कपड़े पहनना भी छोड़ दे तो लोग उसे बिल्कुल ही टुटपुंजियां समझने लगेंगे।

सन् १९१४ में लड़ाई शुरू हो गई। सन् १९१५ में वह दोस्तों के कहने-सुनने से फौज में नौकर हो गया। डाक्टरी पास नौजवानों की फौज में बड़ी ज़रूरत थी। और फिर मुनीर अहमद का तीन वर्ष का व्यावहारिक अनुभव भी उसकी योग्यता का एक प्रत्यक्ष प्रमाण था। फौज में नौकर होने के बाद जब वह वर्दी पहनकर गांव में पहुंचा तो उसका बाप भौचक्का-सा रह गया। उसने समझा कि बेटा कोतवाल बन गया। मुनीर अहमद ने हर सम्भव तरीके से बाप को अपना 'रैंक' समझाने की कोशिश की, लेकिन बाप ने उसकी बातों की तरफ कुछ ध्यान ही नहीं दिया। उसे विश्वास था कि उसके बेटे के अधिकार अब बहुत बढ़ गए हैं, इसलिए गांव के लोग उनसे दबकर रहेंगे।

वह फरवरी में भर्ती हुआ और मई में उसे समुद्र पार जाने का हुक्म मिला। उसकी मां तो रो-रोकर हलकान हो गई। यहां तक कि उसके चले जाने के बाद वह जल्दी मर गई, उसकी शादी को भी ज़्यादा अरसा न हुआ था। सन् १९१५ के आखिर में उसे बाप की एक चिट्ठी फ्रांस में मिली कि उसके यहां एक लड़की पैदा हुई थी और उसकी पत्नी का देहान्त हो गया।

सूबेदार मेजर मुनीर अहमद चुपचाप बैठा खिड़की के शीशे में

से चक्कर खाते हुए खेतों और बिजली के खम्भों पर बैठे गिद्धों की ओर देख रहा था। शाम हो चुकी थी। वज़ीराबाद से आगे गाड़ी निकल आई थी। सहसा उसकी भवें हिलने लगीं। अब गाड़ी ऐसे स्थानों से होकर गुज़र रही थी जिनसे वह खूब परिचित था। वह उन बल खाती हुई नहरों पर नहाने के लिए जाया करता था। किसी पीर साहब का टूटा-फूटा मकबरा भी नज़र आ रहा था। उसके करीब एक मस्जिद भी थी।

गाड़ी मण्डी-डागरां के स्टेशन पर रुके बिना ही आगे बढ़ गई। उस छोटे-से स्टेशन से उसका गांव एक मील की दूरी पर था। पहले जब वह लाहौर से आया करता था तो पैसेन्जर ट्रेन उसे इसी स्टेशन पर उतार देती थी। उस समय भी बबूल के दरख्तों में से मकान का मद्धिम-सा खाका नज़र आ रहा था। स्टेशन से आधा मील के फासले पर उनका अपना रहट था। अपने रहट पर निगाह पड़ते ही वह बेचैन-सा हो गया। वह दूर ही से उन स्थानों को भली भांति देख सकता था। वह अपने रहट को इतनी अच्छी तरह पहचानता था कि गाड़ी में बैठे-बैठे उसे मालूम हो गया कि कौन-सा दरख्त कट चुका है, कौन-सी दीवार गिरा दी गई है। उस तरफ गन्ने पेरने का बेलन था। ज़मीन में गढ़े हुए बेलन के पास एक ओर को बढ़ी हुई छोटी-सी दीवार थी। उसी दीवार के निकट उसने पहली बार अपनी भावी पत्नी का मुंह चूमा था।

जब वह लाहौर में प्रैक्टिस करता था तो एक बार गांव में एक रिश्तेदारी की शादी के मौके पर उसे अधिक दिनों के लिए दुकान बन्द करके गांव जाना पड़ा और जब वह घर पहुंचा तो उसने देखा कि उसके घर में एक खूबसूरत जवान लड़की बैठी हुई है। वह उसे पहचान न सका।

उसकी मां कहने लगी—'अरे बेटा! तू डाक्टर हो गया है और फिर इसे नहीं पहचानता?'

मुनीर अहमद को कभी-कभी मां की बातें बड़ी बेतुकी मालूम होने लगती थीं। उसकी मां ने इसीपर बस नहीं किया, बल्कि वह

बातें बनाती ही चली गई, यहां तक कि वह लड़की हंसने लगी। मुनीर पहले ही खिसियाना हो रहा था और फिर उसकी मां··· उसने लड़की की तरफ देखा तो उसकी हंसी बन्द हो गई। उसने अपने दोनों होंठ खब अच्छी तरह भींच लिए। शायद लड़की पर उसकी टाई का रोब जम गया था।

वह उसके सगे फूफा की लड़की बेगमा थी।

बेगमा कद्दावर और मज़बूत हाथ-पांव की लड़की थी। उसका शरीर अच्छे स्वास्थ्य के कारण ज़रा भारी अवश्य था, लेकिन बेडौल और ढीला-ढाला नहीं था। अपने घर का सारा काम-काज वही करती थी। आटा पीसना, चर्खा कातना, रुई धुनना, गाय-भैंस की सानी करना, खेतों पर भाइयों के लिए खाना ले जाना, रहट से पानी की तीन-तीन गागरें एकसाथ लेकर आना और इसपर अच्छा खाना और खुली हवा। फलस्वरूप वह शहर की नाज़ुक बदन, पिचके गाल, सपाट छाती वाली लड़कियों के विपरीत खूब भरे हुए शरीर की स्वस्थ लड़की थी···कम से कम मुनीर अहमद को वह बहुत पसन्द थी। लेकिन ऐसी लड़की से मुहब्बत का सवाल पैदा ही नहीं होता था।

पहले दिन बेगमा ने ही उसे खाना खिलाया। वह पलंग पर सिर झुकाए बैठा खाता रहा। फिर बेगमा उसकी ओर देखकर मुस्कराती थी और वह झेंप मिटाने के लिए इधर-उधर देखता था। जब वह अकेला होता और विवाह वाले घर से लड़कियों के ढोलक बजाने और गीत गाने की आवाज़ें सुनाई देतीं तो बेगमा न जाने कहां से आ टपकती। घर में इस तरह घूमती जैसे कोई चीज़ ढूंढ़ रही हो। कभी खूंटी से नई रंगी हुई चुनरी उतारकर सिर पर डाल लेती। कभी लकड़ी की चौकी पर बैठकर एड़ियां रगड़-रगड़-कर पांव धोने लगती। कभी-कभी ज़रा-सा रोटी का टुकड़ा नमकीन छाछ के साथ खा लेती। सारांश यह कि किसी न किसी बहाने से घर में ज़रूर आती और किसी न किसी हीले से उससे बात भी ज़रूर करती।

एक दिन रात के वक्त जब आंगन में दीया जल रहा था, सब लोग खाना खाकर ब्याह वाले घर जाने को तैयार थे और मुनीर अहमद झुककर जूता पहन रहा था कि उसकी पीठ पर एक कंकड़ आ लगा। उसने घूमकर देखा तो बेगमा ने शरारत से मुस्कराते हुए मुंह दूसरी तरफ कर लिया था।

इसी तरह बेसकल्लुफी हो गई। एक-दूसरे पर कंकड़ फेंके जाने लगे। एक दिन शाम को वह अपने रहट पर गया। उसका बाप ब्याह वाले काम में फंसा था। शाम का वक्त था। रहट धीरे-धीरे चल रहा था। वह तहमद बांधे, काला पम्प शू पहने रहट की गद्दी पर बैठा था और मन ही मन में अपने इस प्रेम के बारे में विचार कर रहा था। आखिर बेगमा की इन शरारतों और हंसी-मज़ाक की तह में क्या राज़ था? शायद ये सब मासूम शरारतें हों। बेचारी सीधे-सादे स्वभाव की हंसोड़ लड़की है। यों ही दिल बहलाने के लिए चुहल करने लगती होगी। वह कितनी मज़बूत, कद्दावर और हसीन लड़की थी। उसके मुकाबले में वह दुबला-पतला, नाटे कद का बदसूरत न सही, तो खूबसूरत तो हरगिज़ नहीं था। उसने सुना था कि गांव की लड़कियां सीधे-सादे स्वभाव की होती हैं। बाहरी टीप-टाप पर रीझ जाती हैं। हो सकता है कि बेगमा को उससे मोहब्बत हो गई हो···उसका दिल धड़कने लगा। बेगमा के शरीर के स्पर्श की कल्पना ही आनन्ददायक थी। जब कभी वह उससे छू जाता तो उसके शरीर में सिर से पैर तक सनसनाहट फैल जाती। बेगमा का शरीर मदिरा के एक भरे प्याले की भांति छलक जाता था।

इतने में उसे एक कंकड़ आकर लगा।

उसका दिल बल्लियों उछलने लगा। उसने घूमकर देखा। कोई भी सूरत न दिखी। उसने मुस्कराकर मुंह फेर लिया। वह हैरान था कि बेगमा इतनी दूर कैसे चली आई···सहसा फिर एक कंकड़ लगा। उसने तुरन्त सिर घुमाकर देखा और कच्ची दीवार की आड़ में उसे चूड़ियों वाली गोरी कलाई की झलक दिखाई दी। वह धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ा। इतने में उधर से तीसरा कंकड़ मारने के

लिए हाथ उठा···बेगमा ने निशाना बांधने के लिए झांककर देखा और एकदम उसे सामने देखकर उसने प्रसन्नता की एक चीख मारी और भागकर दूर जा खड़ी हुई। रहट के चारों ओर वे एक-दूसरे के पीछे भागते फिरे। बेगमा चीख-चीखकर हंस रही थी। तबेले की एक दीवार ज़रा आगे को बढ़ी हुई थी। बेगमा मुनीर को चक्कर देकर उस दीवार के पीछे छिप गई। मुनीर दबे पांव बढ़ा, तो बेगमा उसकी ओर से बेखबर दीवार की दूसरी ओर ताक लगाए खड़ी थी। उसकी चुनरी कंधों पर गिरी हुई थी। पीठ दीवार से लगी हुई थी और दोनों हाथ दीवार पर टिके थे। घने बालों के साथ बंधी लम्बी चोटी पिंडलियों के ऊपर झूल रही थी। उसका दम फूला हुआ था। छातियां नीचे-ऊपर हो रही थीं···मुनीर चुपके से कदम नापता हुआ पहुंचा और उसने एकदम अपने दोनों हाथ बेगमा के दोनों ओर दीवार पर टेक दिए और उसे घेरे में ले लिया···वह चौंककर चीखी और फिर खिलखिलाकर हंसने लगी। उस समय वह कितनी प्रसन्न थी। रहट के उस खामोश कोने से लगी हुई बेगमा···उसके नथुने फड़क रहे थे, गाल तमतमाए हुए थे, आंखें चमक रही थीं। न जाने उस समय मुनीर अहमद ने उसकी तरफ किन नज़रों से देखा कि उसकी शोखी शर्म में बदल गई और वह आंखें झुकाकर ज़मीन की ओर देखने लगी।

हर तरफ खामोशी छाई थी। सिर्फ पीपल के पेड़ की डालियों में तोते फड़फड़ा रहे थे।

भावावेश में मुनीर अहमद की टांगें कांप रही थीं, "बेगमा!" उसका गला शुष्क हो रहा था।

बेगमा ने धीरे-से ओढ़नी को संवारकर सिर ढांपते हुए एक उचटती-सी निगाह मुनीर पर डाली तो उसके गाल लाल हो गए। वह ज़मीन की ओर देखती हुई बोली—"मुझे जाने दीजिए।"

मुनीर अहमद अपनी दोनों हथेलियां दीवार पर टिकाए खड़ा था। बेगमा ने हरकत की। लेकिन मुनीर की पतली-पतली बांहें उसे घेरे में लिए हुए थीं। वह उनकी ओर ऐसे देखने लगी मानो वे

लोहे की सलाखें हों। जिन्हें हटा देना उसकी ताकत के बाहर था।

मुनीर ने बड़ी नरमी से उसे अपनी बांहों में ले लिया और बड़ी व्याकुलता से उसका गाल चूमा···बेगमा ज़मीन की ओर देखती रही। उसने अपना मुंह छिपाने की कोशिश नहीं की। उसके गाल खून की गरमी से और भी गर्म हो गए। मुनीर ने कुछ टूटे-फूटे शब्द कहे और बार-बार उसके होंठ चूमने लगा। बेगमा ने शरीर ढीला छोड़ दिया···कितनी ज़िन्दगी थी उस जिस्म में, कितना अनोखा सरूर था···वे इसी प्रकार एक-दूसरे से लिपटे हुए न जाने कितनी देर तक खड़े रहे।

इंजन सीटियां देता हुआ चला जा रहा था। उसके रहट का दृश्य आंखों से ओझल होता जा रहा था।···मुहब्बत की इस शुरुआत का अंजाम अच्छा हुआ। उन दोनों की शादी हो गई। अभी आठ महीने के लगभग ही एक-दूसरे के साथ रह चुके थे कि उसे हिन्दुस्तान से बाहर जाना पड़ा। उसे एक टांग रणचण्डी की भेंट भी चढ़ानी पड़ी···उसके चले जाने के बाद उसे अपनी पत्नी की एक चिट्ठी मिली, जिसमें उसने टूटी-फूटी उर्दू में लिखा था कि वह उसके बिना बहुत उदास रहती है। स्वप्न में उसकी सूरत देखती है··· लड़की का जन्म हुआ तो पत्नी मर गई। जब उसे इस बात की सचना मिली तो वह रो पड़ा और उसपर इस समाचार का इतना गहरा असर पड़ा कि उसकी इन्द्रियां शिथिल हो गईं और वह जीवन से इतना विरक्त हो गया कि युद्ध समाप्त होने के बाद भी वापस आने को उसका जी न चाहता था। उसने बाप को लिख दिया कि वह अपनी पोती का खयाल रखे। दो वर्ष पूर्व जब वह काहिरा में था तो मालूम हुआ कि उसके पिता का भी देहान्त हो गया। फिर उसके रिश्तेदारों की चिट्ठियों पर चिट्ठियां आने लगीं कि उसका चाचा उसकी ज़मीन की सारी आमदनी बटोर रहा है। आखिर वह स्वदेश की ओर चल पड़ा।

उसकी ज़िन्दगी में अथाह उल्लास छप्पर फाड़कर प्रविष्ट हुआ था। क्या वह स्वप्न में भी सोच सकता था कि वह इतनी सुन्दर प्रेम करने वाली पत्नी का पति बनेगा ? वह उस सुरूर और आनन्द को, जो उसे अपनी पत्नी से प्राप्त हुआ था, मरते दम तक नहीं भुला सकता था। यह उसका सौभाग्य ही तो था कि ऐसी सुन्दर और सुघड़ पत्नी उसे प्राप्त हुई। लेकिन अभी उसने जाम होंठों से लगाया ही था कि वह हाथ से छूटकर चूर-चूर हो गया। अभी उसकी ज़िन्दगी इतनी नीरस, बल्कि कटु हो गई थी कि यदि उसे अपनी बच्ची का खयाल न होता तो वह कभी का आत्महत्या कर लेता।···शेष जीवन अब वह उस अथाह आनन्द और सुन्दरता की देवी की याद में ही बिता सकता था। वह एक टांग से लंगड़ा भी हो चुका था। पहले उसका विचार था कि दूसरी शादी कर ले, लेकिन अब उसे कोई ख़बसूरत लड़की पसन्द नहीं कर सकती थी। उसने हार मान ली थी। अब वह अपना जीवन इसी तरह बिताने पर सन्तुष्ट था। उसका विचार था कि मौरूसी ज़मीन बेचकर वह दुनिया से अलग-थलग किसी शान्तिपूर्ण कोने में पड़ा रहे। जीवन के कोलाहल से उसे कुछ भी दिलचस्पी बाकी न रही थी।

डिब्बे में हलचल मच गई। गाड़ी गुज़रात के निकट पहुंच रही थी। शहर के आसपास उसे वे सब मकान और दरख्त तथा छोटी-मोटी दुकानें याद थीं। एक लम्बे अरसे के बाद वह वापस आ रहा था। हर चीज़ पहले ही के समान थी। लेकिन इसके बावजूद उसके अपने जीवन में एक महान परिवर्तन हो चुका था। एक सिरे से नक्शा ही बदल चुका था।

गाड़ी धीरे धीरे चलती हुई प्लेटफार्म पर रुक गई। बाहर के लोगों ने अन्दर की तरफ हल्ला बोल दिया और गाड़ी के अन्दर के लोग बाहर की तरफ लपके। लेकिन उसके डिब्बे में कोई गड़बड़ नहीं हुई थी। बाहर से दो कुली आए और उसे फौजी वर्दी में देखकर उसका सामान उठा लिया। वह बगलों में बैसाखियां दबाए बाहर

निकला और कुलियों के साथ जब फाटक क बाहर आया तो उसने गांव को जाने वाले तांगे के लिए इधर-उधर निगाह दौड़ाई। एक आदमी से मालूम हुआ कि तांगा अभी वापस नहीं गया। बाज़ार से आने ही वाला है।

मुनीर अहमद ने सामान एक दुकान पर रखा और दुकानदार से कह दिया कि जब तांगा आए तो उसका सामान उसमें रखवा दे। फिर वह बाज़ार की ओर चला गया। उसने सोचा कि थोड़ी देर सैर ही कर ले। शहर स्टेशन से काफी फासले पर था। रास्ते में हर चीज़ से वह परिचित था। बाज़ार में वही पुरानी दुकानें और चहल-पहल थी। जगह-जगह कुम्हारों की दुकानें, ख़ूबसूरत सुराहियां, घड़े, प्याले, हांडियां बधनी, चूड़े; हर चीज़ जानी-पहचानी हुई थी। वही उजड्ड लोग, वही गन्दे बाज़ार, हर तरफ गर्द-गुबार, लम्बे-लम्बे पट्ठों वाले जवान। वह दोनों बैसाखियों के सहारे बाज़ार में सड़क के किनारे खड़ा हो गया। उसके शुष्क होंठों पर एक फीकी-सी मुस्कराहट उत्पन्न हुई। जब उसने चने का खोमचा देखा तो उसका धैर्य जाता रहा। मसाले में लथ चनों से भरी परात, बीच-बीच में हरी मिर्चें, प्याज़ के कतले ठुसे हुए; उसने दो पैसे के चने लिए और उनपर नींबू निचुड़वाकर पत्ते के चमचे से उन्हें खाने लगा।

इसके बाद वह इधर-उधर घूमता रहा। उसे कपड़ों के कुछ टुकड़े पसन्द आए तो उसने वे अपनी बच्ची के लिए खरीद लिए। चाचा के बच्चों के लिए रेवड़ियां और कुछ मिठाई ले ली और फिर तांगे पर सवार होकर जब स्टेशन पर पहुंचा तो उसके गांव का तांगा जाने के लिए तैयार खड़ा था।

खेतों के बीच में से तांगा ऊबड़-खाबड़ कच्ची सड़क पर हिचकोले खाता चला जा रहा था। मुनीर अहमद अपने विचारों में खोया था। दिल पर उदासी के बादल छाए हुए थे।

सोचते-सोचते उसे अपनी बच्ची का खयाल आया। वह नहीं जानता था कि अपने मन में उसकी कैसी कल्पना करे। शायद लड़की

अपनी मां की तरह खूबसूरत हो या उसकी तरह कमज़ोर, बेडौल और साधारण रूपवाली। रास्ते में दूसरी सवारियों ने उससे कोई भी बात नहीं की। सवारियां अगले गांव की थीं और तांगे वाला एक नौजवान लड़का था, जो उससे परिचित नहीं था।

आखिर तांगा उसके छोटे-से गांव तक जा ही पहुंचा। उसने तांगे वाले को पैसे दिए तो गांव के बाहर मोचियों के लड़के उसके गिर्द जमा हो गए। कुछ बड़े-बूढ़े भी ठिठककर उसकी ओर देखने लगे। चमारों के लड़कों में से एक ने उसका सामान उठाया और वह अपने घर की ओर रवाना हो गया। काहिरा के शानदार और सुन्दर कहवाखानों के बाद ये तंग गलियां कुछ अजीब-सी मालूम हो रही थीं। अपनी गली में पहुंचकर उसने अपने मकान के दरवाज़े पर निगाह डाली। दरवाज़ा बन्द था। शायद जब से उसका बाप मरा था, तभी से बन्द होगा। दरवाज़े के आगे कच्चे चबूतरे पर ठीकरियां और सूखे पत्ते गिरे पड़े थे।

साथ वाला मकान उसके चाचा का था। उसने अन्दर दाखिल होकर आवाज़ दी। उसका चाचा हुक्का उठाए हुए बाहर आया। पहले कुछ क्षणों तक तो उसने उसे पहचाना ही नहीं। एक तो चिंताओं के कारण मुनीर की सूरत बदल गई थी, दूसरे अब वह एक टांग से लंगड़ा भी हो चुका था। लेकिन उसने अपने चाचा को पहचान लिया था। उसका चाचा कद्दावर, सुर्खी लिए काले रंग का एक मोटा-तगड़ा व्यक्ति था। उसने कहा—"चाचा! मैं मुनीर अहमद हूं। पहचाना नहीं क्या?"

चाचा के हाथ से हुक्का छूट गया। दोनों एक-दूसरे से लिपट गए। चाचा उसका हमदर्द और शुभचिन्तक था, लेकिन उसकी चाची बड़ी चालाक औरत थी। वह भी आवाज़ सुनकर आ गई और दुआएं देकर इधर-उधर की बातें बनाने लगी। फिर वह मुड़कर शर्बत बनाने के लिए अन्दर चली गई। मुनीर से अधिक देर तक खड़ा न रहा गया। उसने तुरन्त अपनी बच्ची को देखने की इच्छा प्रकट की। चाचा ने कहा कि बच्चे बाहर खेलने के लिए गए हैं।

देखता हूं कि शायद वह घर में ही हो।

थोड़ी देर बाद चाचा की आवाज़ आने लगी—"चलो बेटा ! तुम्हारे अब्बा आए हैं।"

वह आगे बढ़ा और फिर रुक गया। दरवाज़े में एक मैली-कुचैली, दुबली-पतली, अस्तव्यस्त बालों वाली खूबसूरत बच्ची खड़ी थी। उसका रंग पीलापन लिए हुए था। मुनीर अहमद एक क्षण के लिए खामोश रहा। वह उसकी बच्ची थी—उसकी आंखें बड़ी-बड़ी थीं। भवें बड़ा ही सुन्दर झुकाव लिए हुए। गालों की हड्डियां कमज़ोरी के कारण कुछ उभर आई थीं। बच्ची उसको देखकर खुश नहीं हुई, बल्कि वह उदास, मौन और निश्चल खड़ी रही।

मुनीर अहमद बैसाखियां टेकते हुए आगे बढ़ा। चाचा ने लड़की को उठाकर उसकी बांहों में दे दिया। मुनीर अहमद ने अपनी बेटी को गले से लगाकर उसके माथे पर होंठ रख दिए। चाचा शर्बत लेने के लिए अन्दर चला गया और वह उसे इसी तरह गले से लिपटाए खड़ा रहा, "मेरी बच्ची ! ···मेरी बच्ची !!"

उसके शरीर की थकावट दूर हो गई। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो किसीने मन्त्र फूंककर उसके सारे दुःख शरीर से बाहर खींच लिए हों। सुख और सन्तोष की लहर उसे अपने हाथों और पांवों के नाखूनों तक महसूस हुई। वह चारपाई पर बैठ गया। उसने बच्ची की ओर देखा। बच्ची की आंखों में मुस्कराहट खेल रही थी।··· ऐसा लगता था मानो घर में उसे प्यार करने वाला कोई नहीं था। न जाने घर वालों का कैसा सलूक था। बच्ची की आंखों के नीचे गढ़ों की गहराइयों में एक ऐसी उदासी थी, जिसे देखकर मुनीर अहमद का दिल भर आया।

उसके दिल में अपने चाचा के खिलाफ ज़बर्दस्त शिकायत थी, लेकिन उसे वह ज़बान पर न लाया। चाचा ने शर्बत का लोटा और गिलास एक स्टूल पर रख दिया···इतने में गली के लोग भी जमा हो गए। वे लोग, जो उसके घनिष्ठ मित्र थे, उसे झुक-झुककर सलाम करने लगे। उनमें से बहुतों ने उसे पहचाना ही नहीं। वे उसे पुलिस

का कोई अफसर समझ बैठे। इधर-उधर के बच्चे भी जमा हो गए। और जब उन्होंने आशा को एक वर्दीधारी आदमी की गोद में बैठे देखा, तो वे बड़े प्रभावित हुए और नन्ही बच्ची को भी इस बात का अनुभव हो गया कि अब वह अपने बाप की गोद में है।

जब मुनीर अहमद को शर्बत का गिलास दिया गया तो उसने पहले बच्ची के मुंह से लगा दिया। बच्ची ने अपनी बांहें उसके गले में और भी कसते हुए इन्कार में सिर हिला दिया। उसकी मंशा थी कि पहले उसका बाप शर्बत पी ले। वह एक समझदार बच्ची थी। मुनीर ने पुचकारकर कहा —"नहीं बेटा ! पियो···शाबाश, शाबाश···"

थोड़ी देर के बाद चाचा के बच्चे भी आ गए। मुनीर ने रेवड़ियों और लड्डुओं की टोकरी उनको सौंप दी। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद उसने अपने घर की चाबी मांगी और अपनी बच्ची को गोद में उठाए हुए घर की ओर गया। बाहर का ताला खोलकर ड्योढ़ी में दाखिल हुआ, और दो ही कदम बढ़कर ठिठक गया। फिर उसकी आंखों के सामने बिजली की भांति एक दृश्य कौंध गया।

जब उसे हिन्दुस्तान से बाहर जाने का हुक्म मिला तो समय बहुत कम मिला था, इसलिए वह भागा-भागा घर वालों से मिलने एक ही दिन के लिए आया था। दिनभर ज़रूरी सामान बांधने में लगा रहा फिर गई रात तक आपस में बातें होती रहीं। उसकी मां सारी रात रोती रही—पत्नी से खुलकर बातें करने के लिए समय ही न मिला।

दूसरे दिन रवाना होने से पहले उसका सामान तांगे पर रख दिया गया। वह इसी ड्योढ़ी में बैठा था। पास ही उसकी मां रोए जा रही थी। उसने उसे तसल्ली देने की कोशिश की। लेकिन उस बुढ़िया के तो हवास ही ठिकाने न रहे थे। फिर न जाने वह किस काम से उठकर गली की ओर चली गई। इतने में बायें हाथ वाले

दरवाज़े में से उसकी पत्नी अन्दर दाखिल हुई। वह दृश्य उसके मन पर अंकित होकर रह गया।

उस समय उसकी प्यारी पत्नी की काली आंखों के कोनों में आंसू झलक रहे थे। वह महीन मलमल की काले रंग की कमीज़ पहने हुए थी। कमीज़ के नीचे जालीदार बनियाइन थी। उसकी पतली लचकदार कमर की दोनों रेखाएं जैसे-जैसे ऊपर उठती थीं, वैसे-वैसे फैलती जा रही थीं। उसकी छातियां, जिन्हें अंगिया की आवश्यकता ही नहीं थी, कितनी आकर्षक थीं। सिर ढांकने के लिए जब उसने दोनों हाथ ऊपर उठाए तो उसकी बनियाइन ऊपर को सरक गई और तनी हुई चिकनी खाल पर उसकी कौड़ी की भांति मनोहर नाभि दिखाई पड़ने लगी। पेट के सुन्दर उभार पर एक बड़ी ही मनोहर गहराई···वह उस शरीर का भूखा था। वह उस बदन की पूजा करता था। वह तने हुए चिकने, मांस से भरे कूल्हों पर फिदा था। उस शरीर की लचकदार खाल की गर्मी और नमी को महसूस करके उसपर मदहोशी-सी छाने लगती थी···वह लड़खड़ाते हुए कदमों से आगे बढ़ा। वह नहीं जानता था कि जिस शरीर में मादक शराब लहरें मारती थी, उसे आनन्दित होने से बढ़कर दुनिया में और क्या चीज़ हो सकती थी···वह उसे अपनी बांहों में कसने ही वाला था कि उसकी मां आ गई। उसके कदम रुक गए। उसने आंखों ही आंखों में विदा ली और आंखों ही आंखों में पत्नी को आश्वासन दिया कि वह शीघ्र ही लौट आएगा।

ड्योढ़ी में खड़े-खड़े आज कई वर्ष बाद वही पुराना दृश्य उसकी आंखों के सामने घूम रहा था। उसका दिल बैठने लगा। उसे ऐसा लगा, मानो इस बार वह फिर इंद्रियों की दुर्बलता का शिकार हो जाएगा। उसने दीवार का सहारा लिया और बड़ी मुश्किल से अपनी बच्ची को संभाले रखा। थोड़ी देर बाद उसका सामान भी आ गया। अपने वीरान घर के बीचोबीच उसने चारपाई डालकर बिस्तर बिछा दिया। फिर वह अपनी बेटी से बातें करने

लगा। उसके लिए खिलौने, कपड़े और फल निकाले। बच्ची बहुत खुश हुई। सरसों के तेल के दीये के प्रकाश में उसकी लड़की गई रात तक उससे बातें करती रही और फिर बाप के गले से लिपटकर सो गई। मुनीर अहमद को नींद न आई। वह एक हाथ से बच्ची को पंखा झलता रहा और दूसरा हाथ सिर के नीचे रखकर आकाश ताकता रहा। अब यह घर उसे काटने को दौड़ता था। यदि उसे यहीं रहना पड़े तो वह पागल हो जाएगा।

दूसरे दिन उसने चाचा से ज़मीन बेच देने की इच्छा प्रकट की। लड़ाई खतम हो चकी थी। ज़मीन की कीमतें भी गिर चुकी थीं। लेकिन लड़ाई में लोगों ने कमाया भी खूब था, इसलिए उसकी ज़मीन के कई ग्राहक निकल आए और थोड़ी कशमकश और सौदेबाज़ी के बाद उसने कुल ज़मीन और मकान तेरह हज़ार में बेच डाला।

यह सब काम आठ-दस दिन के अन्दर समाप्त हो गया। जब उसके घर का साज़-सामान छकड़ों पर लदने लगा तो गांव के लोग और उसके दूर और नज़दीक के रिश्तेदार जमा हो गए और सब उसके इस विचार पर खेद प्रकट करने लगे। उसके उन दोस्तों ने जो बचपन से ही उसके साथी थे, उसे समझाया कि वह अपनी जन्मभूमि ज़रूर आता रहे।

मुनीर अहमद ने कांगड़े का घाटी में एक छोटे-से कस्बे में प्रैक्टिस शुरू कर दी।

यह एक पहाड़ी स्थान था। इस घाटी में हरे-भरे मैदान और ऊंचे-ऊंचे पेड़ों के जंगल थे। पहाड़ों से आने वाली आड़ी-तिरछी बरसाती नदियां थीं, जो या तो बरसात के दिनों में बहती थीं या जब पहाड़ों की चोटियों पर बर्फ पिघलने लगती थी। चारों ओर शानदार पहाड़ अभिमान से सिर उठाए खड़े नज़र आते थे।

लड़ाई से पहले यह एक छोटा-सा कस्बा था। लेकिन लड़ाई के दिनों में बड़ी उन्नति कर गया। यहां के जंगलों से लकड़ी हासिल हो जाती थी। लड़ाई के दिनों में ही यहां माचिस बनाने

और रेशम तैयार करने के दो कारखाने भी स्थापित हो गए थे। पहले ये लोग काश्मीर में काम किया करते थे, लेकिन चूंकि वह जगह बहुत दूर थी इसलिए इस जगह का चुनाव किया गया। सरकार ने भी गत्ते और लकड़ी की पेटियां बनाने के कारखाने कायम कर दिए थे। इस तरह बहुत-से सरकारी और गैर-सरकारी लोग भी उस जगह आ बसे थे। बहुत-से लोगों को यह जगह इतनी पसन्द आई कि उन्होंने ज़मीन खरीदकर मकान बनवा लिए और स्थायी रूप से इसी जगह रहने लगे।

कस्बे के बाहर बड़ी संख्या में बंगलानुमा मकान बने हुए थे। यहां अधिकतर ईसाई रहते थे, या बेचारे गरीब एंग्लो-इण्डियन। इस जगह रहने वाले वे लोग थे जिनकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी, लेकिन उनके लिए साफ कपड़े पहनना भी ज़रूरी था। जो लोग वास्तव में पैसे वाले थे वे सिविल लाइन्स में रहते थे।

हर मकान के इर्दगिर्द कुछ ज़मीन छोड़ दी गई थी। सभी मकान लगभग एक ही डिज़ाइन के बने हुए थे। हर एक में तीन-तीन कमरे, इनके अतिरिक्त गुसलखाने, भण्डारघर, बरामदे, रसोईघर, आंगन इत्यादि था।

जो ज़मीन बाहर बची हुई थी, उसमें मकान के बाहर वाले हिस्से में फूलों की क्यारियां बनाई जा सकती थीं और पिछले भाग में सब्ज़ियां उगाई जा सकती थीं। कुछ लोगों ने बैडमिंटन कोर्ट भी बना रखे थे।

उन भवनों के बीच आदमकद बाड़ें थीं। उन बाड़ों की पत्तियां हरे रंग की थीं। बरसात के दिनों में उनमें हल्के रंग के छोटे-छोटे फूल खिलते थे और बारिश में धुले-धुलाए फूलों की कलियां आंखों को बहुत ही भली मालूम होती थीं।

मकान में दाखिल होने के पहले उसकी खूब अच्छी तरह से सफाई करवाई गई। दीवारों पर सफेदी, दरवाज़ों पर नया पालिश। बाकी थोड़ी-बहुत मरम्मत हो जाने के बाद सारा सामान मकान में करीने से रख दिया गया। तीन कमरों में से एक ड्राइंग-

रूम बना दिया गया और एक बड़ा कमरा उसने अपने लिए अलग कर लिया और अपने नाम की लकड़ी की छोटी-सी तख्ती फाटक पर लटका दी।

मुनीर अहमद ने अपने पड़ोसियों की तरह मकान के सामने के हिस्से में क्यारियां बनवाईं। पिछले हिस्से में सब्ज़ियां उगाईं। केवल एक कोने में जंगली गुलाब के कुछ पेड़ रहने दिए। उनकी ओट में लोहे की एक बड़ी-सी बेंच पड़ी थी। यहां चीड़ के ऊंचे-ऊंचे पेड़ों की छाया भी थी। बाद में मकान की पिछली तरफ बैडमिंटन खेलने का कोर्ट भी बना लिया गया।

बाहर के बरामदे में लोहे की तारों के बने हुए गमले लटका दिए गए। उनमें से रंग-बिरंगे फूलों की बेलें नीचे लटकती रहती थीं। कमरे अपनी हैसियत के अनुसार उसने सजा लिए।

रहने का ठिकाना बना लेने के बाद मुनीर अहमद ने आशां (आयशा) को एक स्थानीय स्कूल में दाखिल करा दिया। यह एक मिशन स्कूल था जहां अंग्रेज़ी में शिक्षा दी जाती थी।

बाप के साथ चन्द ही दिन रहने के बाद आशां के चेहरे का रंग बदलने लगा। उसके अंगों में फुर्ती और आंखों में बचपन की चंचलता झलकने लगी।

स्कूल में जूनियर क्लासों तक लड़कियां-लड़के मिलकर पढ़ते थे। इसलिए आशां की लड़कियों के अतिरिक्त लड़कों से भी दोस्ती हो गई। जब कभी मुनीर अहमद अपने मकान के बरामदे में झूलने वाली कुर्सी पर बैठा कोई किताब देख रहा होता, तो आशां के दोस्त और सहेलियां आतीं और मीठी बोली बोलने वाले पक्षियों की तरह चहचहाकर कहतीं—"गुड ईवनिंग अंकल!" मुनीर ने दूसरी लड़कियों की तरह आशा के सिर के बाल भी कतरवा डाले। उसने सोचा कि जब वह बड़ी हो जाएगी तो उसके सिर के बाल छोड़ दिए जाएंगे।

आशां की सबसे गहरी सहेली उसके पड़ोसी हिन्दुस्तानी पादरी मसीह पालसिंह की लड़की थी। मसीह पालसिंह पहले सिख था,

फिर ईसाई हो गया। वह बहुत ही विनम्र स्वभाव का आदमी था। यद्यपि उसके हाथ-पांव की बनावट और शरीर का ढांचा पंजाब के सिखों की तरह खूब मज़बूत था लेकिन उसके सफाचट चेहरे से रूखेपन और कठोरता के वे लक्षण प्रकट न होते थे जो कुछ सिखों की सूरत से प्रकट होते हैं। उसकी आंखों में प्रेम और सन्तोष छन-छनकर निकलता हुआ दीखता था। उसकी शादी एक एंग्लो-इण्डियन स्त्री से हुई थी। दोनों की अवस्था में बहुत अन्तर था। वह लगभग बयालीस वर्ष का था, और पत्नी सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष की। उनके दो बच्चे थे। एक दूधपीता लड़का और एक आशां की उम्र की लड़की मार्था। मार्था भी आशां के साथ मिशन स्कूल में ही पढ़ती थी। उन दोनों की खूब गाढ़ी छनती थी। उनके प्रेम के कारण मुनीर अहमद भी उनके यहां आता-जाता था।

मुनीर अहमद की पहली मुलाकात मसीह पालसिंह से उस समय हुई थी, जब आशां ने अपनी पहली मुंहबोली बहन मार्था को उपहार के रूप में एक गुड़िया भेंट की थी। थोड़ी ही देर बाद मसीह पालसिंह गुड़िया हाथ में लिए हुए उनके फाटक में दाखिल हुआ। मुनीर ने दूर ही से उसे पहचान लिया। यद्यपि पहले कभी उनकी आपस में बातचीत न हुई थी, लेकिन वह उनकी सूरत से परिचित था। उसने अनेक बार उसे अपने बाग की क्यारियां निराई करते, या चीड़ के पेड़ों के नीचे बाइबिल पढ़ते देखा था। जब वह पास आया तो दुआ-सलाम के बाद मसीह पालसिंह ने गुड़िया दिखाते हुए अपनी खास नरम आवाज़ में पूछा—"डॉक्टर साहब! यह गुड़िया मेरी लड़की आपके यहां से ले गई थी। वह कहती थी कि आपकी बच्ची ने उसे उपहार के रूप में भेंट की है।"

मुनीर अहमद ने कुर्सी पेश करते हुए कहा—"जी हां, यह ठीक है। मार्था आशां की मुंहबोली बहन है। आशां मुझसे कह रही थी कि अपनी दो गुड़ियों में से एक वह मार्था को देना चाहती है।"

मसीह पालसिंह यह सुनकर मुस्करा दिया—"मुझे यों ही शक हुआ···मार्था बाहर गई हुई है। मैंने सोचा कि आपसे पूछ लूं।

अब मुझे मार्था से इस गलतफहमी के लिए माफी मांगनी होगी।"

मुनीर अहमद ने उसे विश्वास दिलाया कि मार्था बहुत ही नेक और ईमानदार बच्ची है।

इसके बाद वे पन्द्रह-बीस मिनट तक इधर-उधर की बातें करते रहे।

इस प्रकार एक-दूसरे के यहां आना-जाना शुरू हुआ।

इस स्थान पर हमेशा बहार ही का मौसम रहता था। जब वह आशां को अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाकर बाहर ले जाता तो प्रकृति के सुन्दर-सुन्दर दृश्य, ढलानों तथा पहाडियों की हरियाली, पर्वतों की गम्भीरता और बच्ची की मैना की सी बातों से उसके मन को बड़ी शान्ति प्राप्त होती थी···कभी-कभी वे बड़ी दूर निकल जाते तो उन्हें वे पहाड़ी लड़के दिखाई देते जो नदी के किनारे दम साधे बैठे रहते थे। दरअसल वे मछलियां पकड़ने की धुन में होते थे। एक बड़े-से कटोरे में गुंधे हुए आटे की गोली रखकर वे उसके ऊपर मज़बूत कपड़ा बांध देते और कपड़े के बीचोबीच सुराख कर देते। पानी की रौं में मछलियां बहती हुई आतीं और उनमें से पन्द्रह-बीस उस सुराख में चली जातीं। चुपचाप वे पहाड़ी लड़के एकदम समाधि से चौंक पड़ते और कटोरा पानी से बाहर निकालकर रख देते। फिर वे जल्दी से कपड़ा हटाकर तड़पती हुई मछलियां थैले में उलट देते।

सबसे ज़ालिम तो केकड़े पकड़ने वाले होते थे। ये लोग बरसात के दिनों में नहरों या नदियों के किनारे-किनारे दूर-दूर तक पांव के बल उकड़ूं बैठे नज़र आते थे। डेढ़ हाथ लम्बी लकड़ी के एक सिरे पर पन्द्रह-बीस केंचुए बंधे होते थे। केकड़ा केंचुओं की तरफ लपककर आता और जैसे ही केंचुए को अपनी पकड़ में लेता, शिकारी बस लाठी उचकाकर उसे एक झटके के साथ किनारे पर फेंक देता। केकड़ा घबराहट में बेढंगी-सी चाल से पानी की ओर लपकता। लेकिन इसके पहले कि वह फिर पानी के पास पहुंचने

पाए शिकारी उसकी एक टांग लाठी से दबाकर तोड डालता। केकड़ा पीड़ा से पागल होकर इधर-उधर भाग जाने की चेष्टा करता। लेकिन एक के बाद एक करके उसकी सब टांगें और बाज़ू तोड़कर परे फेंक दिए जाते। उस समय मारे कष्ट के उसकी आंखे बाहर उबल आती थी। लेकिन वह थैले में अपने दूसरे साथियों की तरह बेबस पड़ा रहता था। आशां जब यह दृश्य देखती तो उसका दिल कांप उठता। वह पूछती—"अब्बा ! वे इनका क्या करेंगे ?"

उस समय शिकारी नन्ही लड़की की बात सुनकर कहता—"बीबी ! इसे बंगाली खाया करते हैं।"

वहां बंगाली बाबुओं की भी कमी नहीं थी, इसलिए उन लोगों का यह नया व्यापार भी खूब चल रहा था।

आशां बड़ी समझदार और तेज़ लड़की साबित हुई। वह स्कूल की बहुत अच्छी छात्राओं में समझी जाती थी। स्कूल में छोटे-छोटे नाटक भी खेले जाते थे। एक बार आशां को उस फाख्ता का पार्ट दिया गया जिसका भाई दाना चुगने गया और वह एक चील के झोंपड़े में जा फंसा। ऊपर से चील आ गई और अपने बच्चों को परों में छिपाकर बैठ गई। इधर उसकी बहन फाख्ता यानी आशां बहुत परेशान थी। वह उसे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उस जगह पहुची और बड़ी मुश्किल से अपने भाई को मुक्त करा पाई।

वह कई एक खेल भी खेल लेती थी। उसे रस्सी फांदने में भी बड़ी दक्षता प्राप्त थी। इस खेल में स्कूल की केवल दो लड़कियां उसका मुकाबला कर सकती थीं, बाकी बेचारी मुंह देखती ही रह जाती थीं। वे बेचारी शहरी लड़कियां थीं। उनकी रगों में वह खून कहां जो आशां की नस-नस में दौड़ रहा था।

इसके अलावा उसे गेंद खेलना भी खूब आता था। वह रबड़ के गेंद को एक बार ज़मीन पर दे मारती और फिर गेंद उछाले ही जाती और उसे ज़मीन पर न गिरने देती। इस खेल में स्कूल की कोई भी होशियार से होशियार लड़की उसका मुकाबला न कर सकती थी।

दिन बीतते गए।

मुनीर अहमद की व्यस्तता बढ़ती गई। अब उसका दवाखाना भी चल निकला था। चार घंटे सुबह और चार घंटे शाम वह दवाखाने में ही बिताता था। केवल इतवार के दिन की छुट्टी मनाता, यानी शाम के वक्त दवाखाने भी न जाता। उसने अपने मकान पर ही प्रैक्टिस शुरू कर दी। केवल इतना किया था कि मालिक-मकान से कहकर अपने मकान के आगे वाले हिस्से के सामने एक सायबान खड़ा करा लिया था। उस सायबान के अन्दर लकड़ी की बेंचें बिछी हुई थीं। रोगी आते और उनपर बैठे अपनी बारी का इन्तज़ार करते थे।

डाक्टरी के अलावा उसे मुर्गी पालने का भी शौक था। उसने मकान की पिछली ओर एक अच्छा-सा मुर्गीखाना बनवा लिया था। मुर्गियां पालने की कला पर उसने बहुत-सी किताबें मंगवाईं। किताबों में लिखे हुए आदेशों के अनुसार एक बहुत बड़ी जाली मुर्गीखाने के चारों ओर लगवा दी। जाली के अन्दर ईंटों के छोटे-छोटे खाने बनवा दिए जिससे कि मुर्गियां सर्दी व गर्मी से बच सकें और अंडे दे सकें। उसने अच्छी नस्ल की अंग्रेज़ी मुर्गियां और मुर्गे खरीदकर पाले। कुछ ही वर्षों के बाद उनकी संख्या इतनी अधिक हो गई कि अगर वह चाहता तो अच्छा-खासा व्यापार शुरू कर सकता था। लेकिन उसने सोचा कि कौन यह नया झंझट मोल ले। उसका समय अच्छी तरह कट जाता था। रोज़ अण्डे खाने को मिलते थे, और फिर मुर्गी के बच्चे भी इतने अधिक थे कि रोज़ पकाए जाते तब भी खतम न होते।

बागबानी का भी उसे बड़ा शौक था। अब उसे फूलों की किस्मों का भी काफी ज्ञान था। वह अपने हाथों से क्यारियां बनाकर फूलों के पौधे लगाता। फूलों के साथ वह सब्जियां भी बोया करता था। हर मौसम की सब्ज़ी उसके छोटे-से बाग में मिल सकती थी।

इन कामों के बाद जो समय मिलता वह पादरी साहब की संगति में बिता देता था। आशा प्रायः अपनी सहेलियों में व्यस्त रहती और

वह अपने दोस्त मसीह पालसिंह के साथ बातें करता। मसीह पालसिंह का ज्ञान बहुत विस्तृत था, विशेषकर धर्म के मामले में। सबसे बड़ी बात यह थी कि केवल बाइबिल पढ़ लेना या यीशु मसीह का गुणगान कर लेना उसका धर्म नहीं था, बल्कि वह व्यावहारिक जीवन में भी धर्म की ऊंची शिक्षा का ध्यान रखता था। वह एक व्यावहारिक ज्ञानी था और शायद इसी कारण उसके चेहरे से एक अनन्त आनन्द और सन्तोष का नूर झलकता था। उसकी आवाज़ धीमी थी। उसकी बातचीत में तनिक भी तेज़ी या कठोरता नहीं थी। मुनीर अहमद को उसकी यह अदा बहुत पसन्द थी कि वह दूसरों की बात कान धरकर सुनता था। उसे अपनी बात कहने की कभी जल्दी न होती थी। वह बड़े इत्मीनान से मुस्करा-मुस्कराकर दूसरों की बातें सुनता, चाहे वे बातें कितनी भी शुष्क क्यों न होतीं या कहने वाला कितनी ही गलतबयानी से काम क्यों न लेता, उसके माथे पर बल तक न आता।

उसकी संगति में मुनीर अहमद को हमेशा अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव होता था। मसीह पालसिंह के मकान के इर्दगिर्द उसके मकान की अपेक्षा दुगनी ज़मीन खाली पड़ी थी। शायद ज़मीन के मालिक का उस जगह पर एक और मकान बनवाने का विचार हो जो किसी कारणवश बनवाया नहीं गया। इस समय वह सारी जगह मसीह पालसिंह के कब्ज़े में थी। मसीह पालसिंह ने कोई बाग नहीं लगवाया था। वह कहता था कि उसकी रुचि स्टीवेन्सन की तरह थी। उसे ज़मीन का सादा टुकड़ा बहुत पसन्द था। इसी तरह अपने अहाते में चीड़ के पेड़ों के नीचे बैठना उसे बहुत ही पसन्द था।

शाम के वक्त मुनीर अहमद भी दरख्तों के उस झुण्ड के नीचे जा बैठता था। मुनीर अहमद को धर्म या फिलासफी की बारीकियों से अधिक दिलचस्पी न थी और न वह उन्हें समझता ही था। लेकिन वह उसके भाषण में से काम की कोई न कोई बात पा ही लेता था। उसे विश्वास था यदि कोई बड़े से बड़ा विद्वान भी आकर उसकी

यह बातचीत सुने तो वह उससे प्रभावित हुए बिना न रहे। उसकी अधिक गहरी बातों के बजाय मुनीर अहमद को हजरत ईसा के सीधे-सादे कथन ज़्यादा पसन्द थे। और फिर वह बाइबिल की मनोरंजक कहानियां बड़े गौर से सुनता। भूले हुए बेटों की कहानी, सात कुमारियों की कथा, बीज बोने वाले का किस्सा इत्यादि उसे सचमुच बहुत पसन्द थे। वह ये कहानियां आशां को भी सुनाया करता। गई रात तक आकाश से बातें करने वाले चीड़ के पेड़ों के नीचे मसीह पालसिंह, उसकी पत्नी और मुनीर अहमद बातें किया करते थे। मसीह पालसिंह की आवाज़ में बड़ी मिठास थी। जब वह बातें करते समय अपने हाथों को भी एक खास ढंग से हिलाता तो सुनने वाले पर सुरूर छा जाता। जब कभी मुनीर अहमद को अतीत की याद सताती तो मसीह पालसिंह की आवाज़ सुनकर ही उसे अपने दुःख दूर होते हुए महसूस होते थे। हफ्ते में एक बार वे सब लोग बाइस्कोप देखने चले जाते थे। उन दिनों वहां मूक फिल्में आती थीं। उनमें कुछ धार्मिक खेल भी होते थे, जिन्हें देखकर मसीह पालसिंह की आंखों में आंसू आ जाते थे।

इर्दगिर्द पहाड़ों में बहुत-से मनोरंजन के स्थान भी थे। कभी वे सब मिलकर पिकनिक पर भी चले जाते थे। सारा दिन हंसी-मज़ाक, घूमने-फिरने और नहाने-धोने में बीत जाता था।

धीरे-धीरे मुनीर अहमद बुढ़ापे की तरफ कदम बढ़ाता गया और उसकी बच्ची जवानी की ओर!

आशां जब पन्द्रहवें वर्ष में पहुंची तो उसकी जवानी के सामने उसकी मां का शबाब भी फीका पड़ गया। यह स्वस्थ और सुडौल शरीर वाली हज़ारों में एक थी। उसका रंग गोरा न सही, लेकिन खून की गर्मी से उसके गाल लाल थे। रसीले होंठ, रसभरी आंखें, मानो अभी उनमें से मधु टपक पड़ेगा। वह कहावत कि 'कुछ सूरतें खुदा फुर्सत में आराम से बैठकर पूरा ध्यान लगाकर बनाता है' उसीपर पूरी उतरती थी। लेकिन वह उस समय अपने सौन्दर्य और

यौवन से उतनी ही बेखबर थी, जितनी एक छः वर्ष की बच्ची ! वही भाग-दौड़, कूद-फांद, छीन-झपट ! जब मुनीर अहमद पलंग पर बैठा कोई किताब पढ़ने में व्यस्त होता तो वह बच्चों की तरह मटकती आती और पलंग पर लेटकर बाप का हाथ अपने गाल से मलने लगती। वह समझ जाता कि उस समय उसकी बेटी कोई फरमाइश लेकर आई है। वह उचककर माथे का चुम्बन लेता और पूछता—"आशां ! आज लाड़ली बेटी की क्या फरमाइश है ?"

इसपर वह खिलखिलाकर हंसने लगती—"अब्बा ! आपको मेरे दिल का हाल कैसे मालूम हो जाता है ? क्या आप गैबदान (अन्तर्यामी) हैं ?"

वह आशां की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहता—"हां आशां ! मैं गैबदान हूं। कम से कम तुम्हारे दिल की बातें मुझसे छिपी नहीं रह सकती।"

इसके बाद कुछ मज़ेदार बातें होतीं, और अपनी फरमाइश मंज़ूर हो जाने पर वह अपने कमरे में चली जाती।

आशां अभी तक इतनी अल्हड़ थी कि मुनीर अहमद को यही खयाल आता कि उसके लाड़-प्यार के कारण उसकी लड़की को दुनियादारी की हवा तक नहीं लगने पाई। अभी तक वह नन्ही बच्ची ही है। उसने अनेक बार आशां को मार्था के साथ कमरे में नाचते देखा था। वे दोनों एकसाथ कदम उठातीं। शरीर के प्रत्येक अंग की हरकतों में सामंजस्य पैदा करने की कोशिश करतीं और बड़ी तत्परता से महीन आवाज़ में कोई गीत शुरू कर देतीं। मुनीर अहमद ने बेटी को स्कूल से हटा लिया। अलबत्ता एक अध्यापिका उसे घर पर पढ़ाने आती थी। उसके बाल कटवाने भी अब बन्द कर दिए थे और वे बढ़कर अब बड़े, घने और लम्बे हो गए थे। आशां का मार्था के सिवा किसी और के घर अधिक आना-जाना नहीं था। उसने अंग्रेज़ी ढंग की शिक्षा पाई थी। बुर्के के अन्दर रहना और इतना कड़ा पर्दा करना उसके बस की बात न थी।

तीन-चार वर्ष और बीत गए।

आशां ने वह जोबन निकाला कि यदि वह गांव में होती तो इलाके-भर में शोर-सा मच जाता और कई दिलफेंक नौजवानों के सिर कट गए होते। लेकिन दुनिया के इस खामोश कोने में वह एक जंगली फूल की तरह खिलकर रह गई थी और उसका शरीर जवानी की गर्मी से फुंक रहा था। आंखों में वह तरावट पैदा हो गई थी जो सिर्फ भरपूर जवानी ही का नतीजा हो सकती थी। होंठों पर एक ऐसी रसीली चिकनाई उत्पन्न हो गई थी, जिसपर भौंरे मंडराते रहें। वह पलंग पर पड़ी-पड़ी अंगड़ाइयां लेती। उसके शरीर का जोड़-जोड़ टूटता। अंग-अंग में मीठी-मीठी कसक महसूस होती। वह बैठे-बैठे गहरी सांसें ले-लेकर सीना तान लेती और चोर दृष्टि से उसकी ओर देखती और फिर रास्ता भूली हुई हिरनी की तरह घबराई हुई निगाहों से इधर-उधर देखने लगती। वह घंटों चारपाई पर पड़ी-पड़ी बेचैनी से करवटें ले-लेकर अपने शरीर को इधर-उधर पटकती।

गर्मियों का मौसम था। इतवार का दिन था और दोपहर का समय। मुनीर अहमद अखबार देख रहा था। उसे नींद-सी आ रही थी और फिर उसे पता भी नहीं चला कि कब नींद ने उसे आ दबाया। एकाएक जो आंख खुली तो उसे पसीना आ रहा था। उसने बिजली का पंखा चला दिया। पानी का लोटा लेकर बाथरूम में गया। मुंह पर ठण्डे पानी के छींटे दिए। वह अपने हाथों को उलट-पलटकर देखने लगा। अब उसके हाथ की खाल पर सिलवटें पड़ रही थीं। शरीर का रंग फीका पड़ गया था। वह अपने शरीर में भी पहले की अपेक्षा कुछ दुर्बलता का अनुभव कर रहा था। उसने सोचा कि वह बूढ़ा हो रहा है।

वह बैसाखियां बगलों में दबाए बाहर खुली हवा में निकल आया। हवा बन्द थी, लेकिन आसमान के एक कोने में सुर्मई रंग के बादल निकलकर सूरज को अपने आंचल में छिपा लेना चाहते थे। घटा के आगे-आगे चीलें उड़ रही थीं, जिसका मतलब था कि

बारिश होगी।

वह क्यारियों में से होता हुआ जंगली गुलाब के पेड़ों की ओर चला गया। उस जगह दो-तीन चीड़ के पेड़ भी थे। उसे खयाल आया कि एक अरसे से लोहे की बेंच गुलाब के झुण्ड के पीछे पड़ी है। यदि उसे झुण्ड के इस ओर पेड़ के नीचे रख दिया जाए तो जिस दिन बादल छाए हों, वह सुबह-शाम उसपर बैठकर बाग का नज़ारा देख सकता है।

इन्हीं विचारों में खोया वह आगे बढ़ा। कुंज में बिछी हुई बेंच पर···आशां किसी अपरिचित नौजवान के बाज़ू में बैठी दिखाई दी।

मुनीर स्तब्ध रह गया···कितना विचित्र और अविश्वसनीय··· आशां बदमस्त शराबियों की तरह नौजवान के कंधे पर गिरी पड़ी थी। ढीले-ढाले बाल बेपरवाही से इधर-उधर बिखरे हुए थे। उसकी आंखें बन्द थीं। मुंह ज़रा खुला था और दांत मोतियों की तरह चमक रहे थे। नथ़ने फड़क रहे थे। दुपट्टा सीने पर से खिसक चुका था···और एक गोल गोरी नग्न बांह दिखाई पड़ती थी। नीचे गले में से उसकी दाहिनी छाती का उभार साफ नज़र आ रहा था और वह युवक उसके कंधों, गर्दन, होंठों और आंखों को चूमे जा रहा था। उस समय आशां अपने वातावरण से इतनी बेखबर थी कि उसे अपने तन-बदन का कुछ होश ही न था। वह किसी पके हुए फूल की तरह टहनी से टूटना ही चाहती थी।

यह चकित करने वाला दृश्य इतना अचानक और असाधारण उसकी आंखों के सामने आ गया कि वह बुत बना खड़ा रह गया। उसे यह भी खयाल नहीं आया कि उसे ऐसे मौके पर टल जाना चाहिए। पहले आश्चर्य और क्रोध के मारे उसकी आंखें खुली की खुली रह गईं। उसका एक पांव ज़मीन में गड़ गया।

सहसा युवक की निगाह उसपर पड़ी। बिजली की सी तीव्रता के साथ वह आशां को परे ढकेलकर खड़ा हो गया। दूसरे ही क्षण आशां परे हटी। मुनीर अहमद ने पथराई हुई आंखों से देखा कि वह

अपनी अर्धनग्न छाती ढांपती, ओढ़नी संभालती, घर की तरफ भाग गई और उस अपरिचित युवक ने क्षण-भर फटी-फटी आंखों से उसकी ओर देखा और फिर उचककर बाड़ में से बाहर निकल गया।

कुछ क्षणों तक उसकी चेतना-शक्ति बिल्कुल ही लुप्त हो गई। वह अपनी जगह से हिल न सका। बगलों में दबी हुई बैसाखियां कांपती रहीं। फिर जब क्रोध की पहली लहर चढ़कर उतर गई और वह इस योग्य हुआ कि हिल सके तो बड़ी तेज़ी से बैसाखियां टेकता इधर-उधर देखता हुआ घर की ओर बढ़ा। ड्राइंग-रूम से निकलकर जब वह सोने के कमरे में घुसा तो देखा कि आशां पलंग पर औंधे मुंह पड़ी सिसकियां ले रही थी।

उसके पिछले समस्त जीवन का क्रोध एक शोले की तरह भड़क उठा। उसकी आंखें ऐसी थीं मानो उनसे खून टपकने वाला हो। उसका सिकुड़ा हुआ चेहरा पत्थर की भांति निश्चेष्ट था और चेहरे की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं किसी मिस्री ममी की भांति नज़र आ रही थीं। आशां ने बाप को ऐसी क्रुद्ध अवस्था में कभी नहीं देखा था। बाप अपनी आंखें उसपर गाड़े हुए था। उसकी बाछों में से हिंसक पशुओं की भांति दांत निकले पड़ रहे थे। वह उसे देखकर भयभीत हो गई। भाग निकलने के लिए उठने लगी, लेकिन हाथ-पांव फूल चुके थे। वह विवश होकर याचनापूर्ण दृष्टि से बाप की ओर देखने लगी, लेकिन उसके बाप का चेहरा लाश की तरह सफेद और निश्चेष्ट था, और क्षण-भर रुकने के बाद आगे बढ़ा आ रहा था।

आशां की आंखें आश्चर्यजनक रूप से फट गईं। उसकी कनपटियां जल उठीं। उसने अत्यधिक भय के कारण चीखने की कोशिश की लेकिन उसके कंठ से आवाज़ ही न निकलती थी।

उधर उसका बाप आगे बढ़ता आता था। इधर वह सिर हिलाकर जैसे उसे आगे बढ़ने से रोक रही थी। उसके सूखे होंठ कांप रहे थे। अपने बचाव के लिए हाथ तक उठाने की उसमें शक्ति न रही थी। बाप ने नज़दीक पहुंचकर पूरी ताकत से उसके गाल पर

तमाचा मारा। "हरामज़ादी !···बेहया !!··बेशर्म !!!··· ज़लील···"

उसके मुंह से गालियां ऐसी अनोखी और भयानक आवाज़ में निकल रही थीं, मानो उसके भीतर कोई पशु बैठा बोल रहा हो। आशां थप्पड़ खाकर फर्श पर गिर पड़ी। बाप बैसाखियां परे फेंक, उसपर भेड़िये की तरह झपट पडा। घूंसे पर घूंसा, थप्पड़ पर थप्पड़! पागल कुत्ते की तरह उसने उसके बाल नोच डाले। जैसे-जैसे वह उसे मारता था, वैसे-वैसे उसका वहशीपन बढ़ता जा रहा था। आशां की कमीज़ तार-तार हो गई। मसूढ़ों से रक्त बहने लगा। वह अर्धनग्न अवस्था में चौपाये की तरह घुटने और हाथों के बल चलती हुई दरवाज़े की ओर बढ़ी। इसके पहले कि वह बाप के हाथों की पकड़ से बाहर निकल जाए, उसके सिर पर बैसाखी की चोट इस ज़ोर से पड़ी कि वह बेहोश हो गई।

उस समय मुनीर अहमद ने खिड़की में से देखा कि उसकी बावर्चिन दोपहर की छुट्टी के बाद वापस आ रही है। वह फाटक पर ही थी कि मुनीर अहमद ने तुरन्त सोने के कमरे का दरवाज़ा बन्द किया और ड्राइंगरूम में चला गया। बावर्चिन सीधी रसोईघर में पहुंची और वहां से बर्तनों के हिलने-डुलने की आवाज़ें आने लगीं।

मुनीर अहमद कमरे की खिड़की के सामने खड़ा था। उसकी बर्बरता कम हो रही थी। वह सोचने की कोशिश कर रहा था। उसका क्रोध कुछ-कुछ ठडा पड़ रहा था। धीरे-धीरे उसका दिल परेशान होने लगा। एक अज्ञात-सा भय उसके दिमाग पर छाने लगा। फिर वह बेचैन होकर कमरे में टहलने लगा। जल्दी-जल्दी टहलने के बाद वह एकदम रुका और रुई, पानी तथा दवाओं का बक्स लेकर भागकर सोने के कमरे में पहुंचा। उसने आशां की ओर देखा। आशां खून में लथपथ बेहोश पड़ी थी। उसने उसे उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया। जल्दी से उसके सिर का घाव धोया। उसकी

उंगलियां बड़ी फुर्ती से अपना काम कर रही थीं। घाव पर पट्टी बांध देने के बाद उसने उसके शरीर को टटोल-टटोलकर देखना शुरू किया। उसने उसकी टांगें हिला-डुलाकर देखीं। उसके बाज़ू, कलाइयां, टखने, गर्दन सबको बड़ी नर्मी से हिलाया-डुलाया और उसे थोड़ी शान्ति का अनुभव हुआ। फिर उसने स्टेथेस्कोप लगाकर हृदय की गति और सांस के चलने का निरीक्षण किया। उसे किसी प्रकार की कोई गहरी चोट न आई थी। सिर का घाव भी मामूली था।

उसने खिड़की खोल दी। दरवाज़े में ताला बन्द करके रसोई-घर की ओर गया। बावर्चिन से कहा कि आशां अपनी एक सहेली के यहां दावत में है। वह आज खाना नहीं खाएगा और केवल सूप ही पी लेगा। बावर्चिन मन में प्रसन्न हुई कि जान छूटी।

बावर्चिन के चले जाने के बाद मुनीर अहमद देर तक बरामदे में टहलता रहा। आशां अभी तक बेहोश थी, लेकिन उसे इस बात का सन्तोष था कि उसकी ज़िन्दगी को कोई खतरा नहीं।

बाहर पूरा चांद चीड़ के दरख्तों की कोमल शाखाओं में उलझा हुआ नज़र आ रहा था।

मुनीर अहमद अजीब मानसिक उलझन में पड़ा था। दूर झींगुर बोल रहे थे। वह रात्रि के अंधकार में बैसाखियां टेकता हुआ बाड़ में से निकलकर मसीह पालसिंह के मकान की तरफ बढ़ा। वह कमरे में बैठा नज़र आ रहा था, लेकिन वह अकेला न था। मार्था उसके पास बैठी थी। मुनीर अहमद चोरों की तरह खिड़की के पास खड़ा हो गया। मन में डर रहा था कि यदि उसे कोई इस हालत में देख ले तो न जाने क्या समझे ? इतने में मार्था दूसरे कमरे में चली गई तो उसने मसीह पालसिंह को आवाज़ दी। मसीह पालसिंह ने उसे अंदर बुला लिया। लेकिन उसने कहा कि वह उससे अकेले में बातचीत करना चाहता है।

मसीह पालसिंह घबराया हुआ नंगे सिर बाहर निकल आया। चीड़ के दरख्तों के नीचे पहुंचकर दोनों एक बेंच पर बैठ गए।

मुनीर अहमद ने सारी बात कह सुनाई। मसीह पालसिंह ने कुल घटना सुनने के बाद कहा—"यह बिल्कुल मामूली-सी बात है। जवानी की उम्र ही ऐसी होती है। इस तरह की बातों पर आपको परेशान न होना चाहिए, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि आप लड़की की शादी कर दें। आपको चाहिए था कि यहां तक नौबत पहुंचने के पहले उसकी शादी कर देते।"

इसके बाद मसीह पालसिंह ने अपने खास लहजे में एक बड़ा लम्बा-चौड़ा भाषण दिया। मुनीर अहमद के दिल को बड़ी तसकीन हासिल हुई। बातें करने से उसके जी का बोझ हल्का हो गया। फिर जब वह विदा होने के लिए उठा तो लज्जित होकर बोला—"अफसोस तो इस बात का है कि मैंने बेचारी को पीट डाला।"

ज़िन्दगी में एक बार फिर सिक्खों के खास अन्दाज़ में निर्भीक और लम्बा ठहाका लगाकर मसीह पालसिंह कहने लगा—"मिस्टर मुनीर अहमद! आपसे चार अंगुल ऊंची और मज़बूत शरीर वाली नौजवान लड़की का आपके घूंसों से कुछ नहीं बिगड़ सकता!"

जब मुनीर अहमद वापस आया तो उसने दरवाज़ा खोलकर देखा कि आशां अब भी बेहोश पड़ी है। बड़ी खिड़की में से पूरे चांद की दूध-सी सफेद रोशनी अन्दर दाखिल हो रही थी। वह उसके पास जा खड़ा हुआ। आशां की कमीज़ के चिथड़े लटक रहे थे। उन चिथड़ों पर भद्दे रंग के खून के धब्बे दिखाई दे रहे थे। वह इस दृश्य को देखने की ताब न ला सका। उसने ज़मीन की ओर देखते हुए हाथ बढ़ाकर उसकी कमीज़ उतारी और जल्दी से मुंह फेरकर उसे अंगीठी में फेंककर माचिस दिखा दी।

कमरे में पूरा सन्नाटा छाया था, केवल क्लाक की टिक-टिक सुनाई दे रही थी। उसके दिल पर एक धुंध-सी छा रही थी। उसकी टांग लड़खड़ा रही थी। उसने कांपते हुए हाथों से ड्रेसिंग टेबल की दराज में से धुली हुई कमीज़ निकाली और बड़ी सावधानी से नज़रें

ज़मीन पर गाड़े हुए वह आशा के पलंग की ओर कदम बढ़ाता रहा···सहसा उसकी आंखें ऊपर उठ गईं।

श्वेत चांदनी में, उजले बिस्तर पर नूर के सांचे में ढला हुआ बेदाग और बेऐब शरीर ऐसे पड़ा था, जैसे सीप में मोती···

○○○

मुद्रक: गजेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, नवान शाहदरा, दिल्ली-३२ 1245

ACC. No. 5570
CLASS No. B-31 (BAL)
Date 24/1/89 N83
R.B.A.N.M's High School (Main) LIBRARY

हिन्द पॉकेट बुक्स

आशा है आपने इस पुस्तक को पसंद किया होगा और आप चाहेंगे कि ऐसी ही रोचक तथा उपयोगी अन्य पुस्तकें आपको पढ़ने के लिए मिलें। **हिन्द पॉकेट बुक्स** द्वारा उपन्यास-कहानी, कविता-शायरी, नाटक, संस्मरण, यात्रा, हास्य-व्यंग्य, स्वास्थ्य, सेक्स तथा आत्मविकास आदि विभिन्न विषयों पर देश-विदेश के प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। इन पुस्तकों की साज-सज्जा और छपाई बहुत सुन्दर है, इसके बावजूद मूल्य इतना कम कि हर पाठक इन्हें आसानी से खरीद सकता है।

हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं, समाचारपत्र-विक्रेताओं, रेलवे बुक-स्टालों और रोड-वेज़ बुक-स्टालों से मिलती हैं। यदि आपको किसी तरह की कठिनाई हो तो आप सीधे हमें लिखिए। दस रुपये मूल्य की पुस्तकें एकसाथ मंगाने पर डाक-व्यय नहीं लगता।

ACC. No 5570
CLASS No 8-31 (BAL)
Date 24/4/89 N83

20.

19.

सपने सुहाने

बलवन्तसिंह

LIBRARY

दरअसल औरत का दूसरा नाम कमज़ोरी है। वह जब देने लगती है तो अपना सब कुछ दे डालती है। वही औरत जब वापस लेती है तो सब कुछ वापस ले लेती है।—यह तथ्य प्रतिष्ठित हिन्दी कथाकार बलवंतसिंह के 'सपने सुहाने' में पूरा उतरता है।

मुंशी प्रेमचंद की तरह बलवंतसिंह उर्दू से हिन्दी में आए। उर्दू में वे कहानियां ही लिखते थे। हिंदी में उन्होंने उपन्यास लिखना प्रारंभ किया। उनके आधा दर्जन से ऊपर उपन्यास लोकप्रिय हो चुके हैं।

'सपने सुहाने' उनके लघु उपन्यास 'औरत और आबशार' का पॉकेट बुक संस्करण है जिसमें सुहाने सपनों में खोए दो प्रेमियों का अत्यंत हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है।

भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

हिन्द पॉकेट बुक्स